वर्ष 13 अंक 1 लोक प्रशासन जनवरी-जून, 2021

लोक प्रशासन

ISSN: 2249-2577

अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

वर्ष 13 | अंक 1 | जनवरी–जून 2021

नागरिक समाज की प्रशासन में भूमिका
Jhi|dk'k ef.k f=ikBh 1

चीन के साथ सैन्य मोर्चा तथा भारतीय रक्षा क्षेत्र की उपलब्धियाँ
xk/kh th jk; 10

वैश्वीकरण का राज्य एवं भारतीय लोक प्रशासन पर प्रभाव
me:'k d|ekj 25

कांग्रेस पार्टी की अधोगतिः बिहार के विशेष संदर्भ में (1967–2020)
'kf'k Hk"k.k d|ekj 35

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन : एक अध्ययन
fLuX/kk f=ikBh 119

INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

Hkkjrh; ykd i'kklu lLFkku

v/;{k

funs'kd] vkbZ- vkbZ- ih- ,-]
ubZ fnYyh

lEikndh

çk- ,l- ,u- feJ
uks,Mk

lg-lEikndh

Mk- lkdsr fcgkjh
ubZ fnYyh

lEikndh eaMy

ik- d- d- ik.Ms;
vkbZ- vkbZ- ih- ,-] ubZ fnYyh

ik- vferk flag
t-,u-;-] ubZ fnYyh

ik- Jhidk'k flag
fnYyh fo'ofo|ky;] fnYyh

Mk- ioh.k dqekj
ikpk;] ';keyky dkyst] fnYyh

Mk- v'kksd dqekj ik.Ms;
Hkkrh;o vkbZ-,-,l-] ubZ fnYyh

ikB-l'kk/kd

Lugyrk

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

Hkkjrh; ykd i'kklu lLFkku

bUnizLFk ,LVsV] fjst jksM] ubZ fnYyh&110002

Ykkd i:'kklu

[kM-13] vd-1] tuojh-tu 2021

vuØef.kdk

i"B

lEikndh; v

Yk[k

नागरिक समाज की प्रशासन में भूमिका
श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी 1

चीन के साथ सैन्य मोर्चा तथा भारतीय रक्षा क्षेत्र की उपलब्धियाँ
गाँधीजी राय 10

वैश्वीकरण का राज्य एवं भारतीय लोक प्रशासन पर प्रभाव
उमेश कुमार 25

कांग्रेस पार्टी की अधोगतिः बिहार के विशेष संदर्भ में (1967–2020)
शशि भूषण कुमार 35

पंचायती राज व्यवस्था में डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम की भूमिका
ब्रजेश कुमार मिश्र 52

भारत में जेण्डर बजटिंग के 15 वर्ष
आर.के.चौबीसा 59

भीमराव अंबेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा
शीला कुमारी 73

पर्यावरण प्रदूषणः एक वैश्विक चुनौती
प्रतिभा तिवारी एवं अवनीन्द्र कुमार तिवारी 85

भारतीय लोकतंत्र पर कोविड-19 महामारी का प्रभाव
पूजा गुप्ता एवं निलांजना जैन 93

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और पंचायतीराज व्यवस्था : एक मूल्यांकन
मो. ताहिर अन्सारी 100

i"B

राज्य सभा की प्रासंगिकता : एक मूल्यांकन
सीमा दास 110

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन : एक अध्ययन 119
स्निग्धा त्रिपाठी

y[kd

श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी–कुलपति, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश।

डॉ. गाँधीजी राय–प्रोफेसर (अ.प्रा.), राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. उमेश कुमार–प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. शशि भूषण कुमार–सह प्राध्यापक, स्नातकोत्तर राजनीति शास्त्र विभाग, आर. एन. कॉलेज, हाजीपुर, वैशाली, बिहार।

डॉ. ब्रजेश कुमार मिश्र–सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, अखिल भाग्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानापार, गोरखपुर, उ.प्र.।

डॉ. आर.के.चौबीसा–प्रोफेसर, इन्दिरा गांधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर।

डॉ. शीला कुमारी–व्याख्याता, वीर कुँवर सिंह इंटर महिला कॉलेज, मेदिनीपुर, नासरी गंज, रोहतास, बिहार।

डॉ. प्रतिभा तिवारी–फोरेंसिक वैज्ञानिक, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, उ.प्र.।

डॉ. अवनीन्द्र कुमार तिवारी–वरिष्ठ वैज्ञानिक, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर।

पूजा गुप्ता–शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

डॉ. निलांजना जैन–शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आर्य कन्या डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

मो. ताहिर अन्सारी–शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)।

डॉ. सीमा दास–सहायक प्राध्यापिका, राजनीति शास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ.प्र.।

कु. स्निग्धा त्रिपाठी– शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)।

lEikndh;

शासन की उत्पत्ति राज्य के अनिवार्य अंग के रूप में हुई और शासन के दायित्वों की पूर्ति के लिए लोक प्रशासन अस्तित्व में आया। इस प्रकार, लोक प्रशासन सरकार के क्रियाकलापों के रूप में राजनीतिक व्यवस्था के उदयकाल से ही विद्यमान रहा है। शासन के लक्ष्यों और जनमानस की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रशासनिक संरचनाएँ एवं व्यवस्थाएँ कार्य करती रही हैं। जब से राज्यों और सरकारों का उदय हुआ तथा उनका जो भी स्वरूप रहा है, उनको अपने निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किसी-न-किसी रूप में एक प्रशासनिक ढांचे की आवश्यकता रही है। प्रत्येक सरकार को अपने सार्वजनिक मामलों का संचालन किसी-न-किसी प्रशासनिक व्यवस्था से करना होता है।

लोक प्रशासन एक संस्थागत यंत्र है, जिसका प्रयोग राज्य द्वारा योजनाओं और कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में किया जाता है। यह एक सशक्त एवं स्थिर समाज की प्रथम आवश्यकता है। समाज के विकसित और जटिल होने के साथ, लोक प्रशासन की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो गई और आज भी इसका महत्व बढ़ रहा है और इसका विस्तार निरन्तर होता जा रहा है। इसके विस्तृत रूप के कारण अब लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच विभाजन संबंधी विचार भी अपना औचित्य खोते जा रहे हैं। आज यह माना जाता है कि प्रशासन का रूप चाहे कोई भी हो यदि इसका उद्देश्य लोकहित है और यह लोक को ध्यान में रखकर कार्य करता है तो यह लोक प्रशासन ही कहलाएगा।

1990 के दशक में शुरू हुए उदारीकरण, निजीकरण एवं सार्वभौमिकता के युग ने भारतीय समाज एवं राजनीति के पूरे परिदृश्य को बदल दिया है। इसकी वजह से लोक प्रशासन के प्रसंग में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। जो सरकार कल्याणकारी राज्य, समाजवादी समाज का रूप अथवा लोकहितकारी विचारधारा का केन्द्र बनकर कार्य कर रही थी, आज वही सरकार नव उदारवादी मूल्यों की स्थापना के लिए कार्य कर रही है।

समकालीन लोक प्रशासन विकसित देशों में व्यापक रूप से प्रभावित हो रहा है जिससे इन देशों में सरकारों की प्रकृति में भी परिवर्तन आता जा रहा है। इन देशों में परंपरागत लोक प्रशासन को प्रतिदिन नई चुनौतियां मिल रही हैं और इन चुनौतियों को रखने वाले सार्वजनिक क्षेत्र में लोक प्रशासन के आकार और क्षेत्र को घटाने के प्रबुद्ध और तार्किक विचार राजनीतिज्ञों को दे रहे हैं।

आज जहाँ लचीली सरकार की बात हो रही है, वहाँ परंपरागत लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं जैसे आजीवन पेशा, पदसोपान, विवेकशील नौकरशाही आदि का

स्थान अब समाज में परिवर्तित हो रहा है। इसी कारण, आज लोक प्रशासन की प्राथमिक भूमिका का दावेदार होने पर ही सवाल उठता है।

इस परिवर्तित माहौल में लोक प्रशासन का परंपरागत स्वरूप, जो कि नौकरशाही को केन्द्र में रखकर चलाता है, मान्य नहीं रह गया है। आज के समय में लोक प्रशासन को आंतरिक एवं बाह्य रूप से सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला विचार ''सुशासन'' है। इस विचार के चलते प्रशासन के चेहरे में अभूतपूर्व परिवर्तन, हमें लोक प्रशासन के चरित्र में दिखाई पड़ता है। अच्छे अभिशासन या सुशासन के इस विचार ने लोक प्रशासन के न केवल चरित्र बल्कि उसकी कार्यशैली एवं क्षमता में भारी परिवर्तन किया है। सुशासन की अवधारणा ने लोक प्रशासन के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने की कोशिश की है और साथ ही लोक प्रशासन के महत्व को और अधिक स्पष्ट भी किया है। इस अवधारणा के अनुसार सरकार से ज्यादा शासन की स्पष्टता तथा कार्यक्षमता पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

संक्षेप में, यह स्पष्ट है कि लोक प्रशासन ने पिछले सौ सवा सौ वर्षों में विकास की विभिन्न अवस्थाओं, चुनौतियों, समस्याओं एवं उथल-पुथल के दौर से गुजरते हुए अपने वर्तमान स्वरूप को पाया है। अपने मौजूदा स्वरूप में लोक प्रशासन न सिर्फ अपनी सीमाओं एवं कमियों को जान पाया है, बल्कि उसमें अपेक्षित बदलाव लाते हुए सुशासन के आदर्श को लक्षित भी किया है।

इस पत्रिका के प्रथम लेख में *श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी* ने प्रशासन में नागरिक समाज की भूमिका को व्याख्यायित किया है। नागरिक समाज स्वैच्छिक नागरिक और सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं से बना एक ऐसा संगठन है, जो विधि के शासन को आधार बनाकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। विकासशील देशों में नागरिक समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में नागरिक समाज ने अन्ना आंदोलन, सीएए के खिलाफ आंदोलन तथा किसान आंदोलन किया है। वह समाज के उन पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है जो जन सामान्य के हितों से जुड़े होते हैं

भारत और चीन दोनों एशिया की बड़ी शक्तियाँ हैं। 1962, के चीनी युद्ध के समय से ही दोनों के संबंध खराब हैं। संबंध सुधारने तथा सामान्य बनाने में सीमा विवाद सबसे बड़ी बाधा है। *गाँधीजी राय* ने अपने आलेख में सैन्य मोर्चे पर भारत और चीन की स्थिति के साथ-साथ यह बतलाया है कि रक्षा क्षेत्र के मामले में आज के भारत की कितनी उपलब्धियाँ हैं और सरकार हर क्षेत्र की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

वैश्वीकरण तथा भूमण्डलीकरण की संकल्पना निजीकरण तथा उदारीकरण से निकटता के साथ जुड़ी है। वैश्वीकरण का राज्य एवं भारतीय लोक प्रशासन पर क्या प्रभाव है। इसको *उमेश कुमार* ने अपने लेख में विश्लेषित तथ्यों से स्पष्ट किया है कि कैसे यह प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित करता है तथा भारत में वैश्वीकरण का

स्वरूप स्वयं भी भारतीय प्रशासन की संरचना एवं कार्यकरण से प्रभावित हुआ है।

राजनीतिक दल राजनीतिक संस्थाओं के महत्वपूर्ण घटक हैं। जिसके ऊपर लोकतांत्रिक व्यवस्था के सफल संचालन की जिम्मेदारी है। दुर्भाग्यवश, आज राजनीतिक दल भी अधोगामी स्थिति के शिकार हैं। परिवारवाद, वंशवाद पर आधारित दलीय प्रणाली ने राजनैतिक व्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ खड़ी कर दी है। प्रस्तुत लेख में *शशिभूषण कुमार* ने भारत के सबसे प्राचीन दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पतनशीलता का विश्लेषण बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में किया गया है।

अपने शोध पत्र में *ब्रजेश कुमार मिश्र* ने भारत में पंचायती राज के संवैधानिक विकास का वर्णन करते हुए डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम की भूमिका की व्याख्या की है। साथ ही उन पहलुओं को भी उल्लेखित किया है जो पंचायती राज व्यवस्था में डिजिटलाइज़ेशन के बाधक हैं। इस कार्यक्रम ने गांवों को आत्मनिर्भर बनाने में योगदान दिया तथा स्वास्थ्य, कृषि, शिक्षा, अर्थव्यवस्था इत्यादि सभी क्षेत्रों में प्रभावित किया है।

आर. के. चौबीसा ने अपने लेख में महिला, पुरुष, व उभयलिंगी को जेण्डर में सम्मिलित करते हुए जेण्डर बजट प्रणाली के उद्‌गम की विवेचना की है। जो इस बजट विवरण में 15 वर्षों में किए गए वित्तीय आंवटनों का विश्लेषण है कि कैसे जेण्डर समानता कायम करके सामाजिक-आर्थिक भेदभाव को दूर किया जा सकता है।

डा. भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय के माध्यम से समाज की अस्वस्थ परंपराओं को समाप्त कर समानता पर आधारित नया समाज बनाने का जोरदार आंदोलन छेड़ा। उनके सामाजिक न्याय से संबंधित चिंतन का *शीला कुमारी* के आलेख में विश्लेषण किया गया है और बताया गया है कि सामाजिक न्याय की प्रक्रिया से समाज की व्यवस्था न्यायोचित बनती है तथा राष्ट्रीय जीवन की समरसता की दिशा में अभिवृद्धि होती है।

पर्यावरण प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती है। *प्रतिभा तिवारी* एवं *अवनीन्द्र कुमार तिवारी* ने अपने लेख में विभिन्न वैज्ञानिकों की रिपोर्टों के आधार पर पर्यावरण प्रदूषण का उदाहरण सहित विश्लेषण किया है। उन्होंने पर्यावरण में हुए बदलावों पर तत्काल प्रभाव से विचार करने के लिए आगाह किया है और कहा है कि यदि जल्द कदम न उठाए गए तो वातावरण में अचानक आने वाले परिवर्तनों से पूरे विश्व में संघर्षों एवं युद्धों का सिलसिला भी प्रारंभ हो सकता है।

भारतीय लोकतंत्र को विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का दर्जा प्राप्त है वर्तमान समय में विश्व कोरोना नामक महामारी का प्रकोप झेल रहा है। जहाँ अमेरिका, इग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली और स्पेन जैस लोकतांत्रिक देश इस संकट से जूझने में असफल रहे वहीं कुछ गैर-लोकतांत्रिक साम्यवादी देशों जैसे चीन, उत्तर कोरिया आदि ने अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन किया। भारत में कोविड-19 ने जनमानस के सामने जीवन निर्वाह की विकराल समस्या खड़ी कर दी है। इस समस्या का विकराल होना

चुनौतीपूर्ण है। यह *पूजा गुप्ता* एवं *निलाजंना जैन* ने अपने लेख में प्रस्तुत किया है।

मो. ताहिर अंसारी ने अपने शोधपत्र में भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के रूप में पंचायती राज के विकास के विविध चरणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है कि कैसे पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करने में इनकी कार्यप्रणाली में सुधार आया है। इसने जनकल्याणकारी योजनाओं में सहभागिता को बढ़ावा देकर देश के राजनीतिकरण, आधुनिकीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

विश्व में प्रचलित शासन प्रणालियों में सर्वोत्तम संसदीय प्रणाली को भारत ने अपनाया है। हमारी द्विसदनीय प्रणाली राज्यसभा तथा लोकसभा उच्च सदन है। *सीमा दास* ने अपने आलेख में राज्य सभा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय देने और संवैधानिक एवम् व्यावहारिक स्थिति का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए सदन की उपयोगिता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन भारत की ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य सुधार का कार्यक्रम है, इसकी शुरुआत 12 अप्रैल 2005 को की गई। इसका उद्देश्य सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को सस्ती, सुगम, उच्च गुणवत्ता युक्त चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना है। *स्निग्धा त्रिपाठी* ने अपने लेख में इसके उद्देश्य, लक्ष्य एवं कार्यक्रमों की भूमिका का विस्तृत विवेचन किया है।

लोक प्रशासन का यह अंक भिन्न-भिन्न लेखों से संग्रहित है। इसके संपादन में हम लेखकों के आभारी हैं क्योंकि उन्होंने अपने प्रबुद्ध लेखों का इस पत्रिका में योगदान दिया। श्रीमती स्नेहलता के सक्रिय निष्पादन के लिए सधन्यवाद।

Nikund

नागरिक समाज की प्रशासन में भूमिका

श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी

lkjk'k *नागरिक समाज स्वैच्छिक नागरिक और सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की समग्रता से बना एक ऐसा संगठन है, जो 'विधि के शासन' को आधार बना कर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। विकासशील देशों में नागरिक समाज की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। यह हर उचित नियम का समर्थन तथा अनुचित नियमों का विरोध करती है। भारत जैसे विकासशील देश में नागरिक समाज ने अपनी भूमिका का बड़ी गम्भीरता से निर्वहन किया है। हाल के दिनों में नागरिक समाज ने अन्ना आन्दोलन, CAA के खिलाफ आन्दोलन और किसान आन्दोलन किया है, किसान आन्दोलन अभी भी चल रहा है। वस्तुतः नागरिक समाज उन पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है, जो जन सामान्य के हितों से जुड़े होते हैं। अभीष्ट शोध पत्र में 'नागरिक समाज' की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए प्रशासन में उसकी भूमिका को व्याख्यायित किया गया है।*

प्रस्तावना

नागरिक समाज से अभिप्राय गैर-सरकारी संस्थाओं जैसे सहकारी, व्यावसायिक एवं कर्मचारी संगठनों तथा उन व्यवस्थित संस्थाओं से है जो राज्य तथा परिवार के बीच कड़ी का कार्य करते हैं। राजनीतिक समूह, धार्मिक समूह और सामुदायिक समूह आज के युग में न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। आजकल अनेक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय सिविल सोसाइटी के उदाहरण मिलते हैं जो अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल करने में लगे हुए हैं। सामाजिक विकास के क्षेत्र में पर्यावरणीय या मानव अधिकारों से संबंधित N.G.O. परंपरागत राजनीति के क्षेत्र में एक नया आयाम जोड़ते दृष्टिगत होते हैं। मॉण्टेस्क्यू, हेगेल और डी0 टाकविले जैसे प्रबुद्ध दर्शनिकों के समय से आरम्भ नागरिक समाज की संकल्पना निरन्तर एक अत्यंत प्रभावशाली विषय-वस्तु रही है। नागरिक समाज की संकल्पना के

पुनरूत्थान का कारण काफी हद तक पूर्वी यूरोप और पूर्व सोवियत संघ में उत्तर सर्वसत्तावादी शासन के विरूद्ध नागरिक समाज आदोलनों से मिली प्रेरणा को माना जा सकता है। परिवर्तन की अबाधिक अनन्तर इन क्षेत्रों में और तृतीय विश्व के अनेक देशों में लोकतांत्रिक संक्रमण की स्थिति बनी रही जिसका उल्लेख *सैमुअल पी0 हंटिंग्टन* ने 'तीसरी लहर' के रूप में किया है।

नागरिक समाज की विशिष्टता की जड़े लोकतंत्रीकरण के उन उत्तरोत्तर आंदोलनों में पाई जा सकती है जिसकी शुरूआत लैटिन अमेरिका और पूर्वी यूरोप में हुई तथा प्रसार विकासशील जगत में हुआ। नागरिक समाज की विशेषता यह बताई गयी है कि यह एक ऐसा समाज है जो तानाशाह सरकार की शक्तियों को सीमित करने के लिए और जनता के सशक्तिकरण की दिशा में कार्य करने के लिए उत्तरोत्तर रूप से एक महत्वपूर्ण अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। नागरिक समाज को सुशासन (Good Governance) की एक अनिवार्य पूर्वापेक्षा माना गया है। इसके योगदान को विशेष रूप से पारदर्शिता, प्रभावकारिता, खुलापन, अनुक्रियाशीलता और जवाबदेही सुनिश्चितता करने की दिशा में दृढ़तापूर्वक कार्य कर एक नैतिक और खुले लोकतंत्र का पोषण करने, कानून का शासन और विविधता एवं बहुलवाद को स्वीकार किए जाने के मामले में मान्यता दी गयी।

राजनीतिक रूप से परिकल्पित नागरिक समाज की जड़ें उदारवादी–लोकतांत्रिक सिद्धान्त की आंग्ल–अमेरिकी परंपरा में है जिसमें नागरिक संस्थाओं और राजनीतिक कार्यकलाप को नागरिकता अधिकार लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व और कानून के शासन के सिद्धान्तों पर आधारित एक विशिष्ट प्रकार के राजनीतिक समाज के प्रादुर्भाव के एक अनिवार्य घटक के रूप में अभिज्ञात किया जाता है। नागरिक समाज की समाजशास्त्रीय संकल्पना एक तरफ राज्य और दूसरी ओर समाज के मूलभूत निर्णायक तत्वों के बीच स्थित एक मध्यवर्ती सहयोगात्मक क्षेत्र की संकल्पना है जिसमें सामाजिक संगठन निवास करते हैं और उसके सदस्यों के पास कुछ हद तक स्वायत्तता और स्वैच्छिक सहभागिता होती है।

,Me fLeFk (Adam Smith) ने पहली बार बाजार संगठित आवश्यकता क्षेत्र के रूप में इसके शास्त्रीय बुर्जुवा अर्थ को स्पष्ट किया जो अलग-अलग (निजी) स्वामियों की स्वार्थपरता द्वारा प्रेरित है। परन्तु एडम स्मिथ **y,d** की इस धारणा से काफी प्रेरणा लेते हैं कि नागरिक समाज का गठन संपत्ति, श्रम-विनिमय और उपभोग द्वारा होता है। बाजारों के तीव्र विकास में जल्द ही बुर्जुवा राजनीतिक अर्थशास्त्रियों को नागरिक समाज को एक ऐसे स्वायत्त स्वशासी क्षेत्र के रूप में स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया जो विशिष्ट लाभ के लिए व्यक्तिगत प्रयासों को सार्वजनिक कल्याण में परिवर्तित कर सके। *हेगेल* ने इस समझ के अनुसार अपने राज्य और नागरिक समाज के सिद्धान्त का निर्माण किया और उसने कहा कि नागरिक समाज राज्य अविकसित

या प्रारम्भिक रूप है जिसमें राज्य की सम्भावना तो है परन्तु उसकी वास्तविक आत्मा और विशिष्टता का अभाव है।[1] *मार्क्स* ने हेगेल के सिद्धान्त में जो परिवर्तन किया वह वामपंथ के काफी कुछ विचारों को बताता है। *टाकविले* के अनुसार नागरिक समाज स्व संघटन और सहयोग की अनौपचारिक संस्कृति द्वारा संपोशित स्वैच्छिक साहचर्य का एक मध्यवर्ती क्षेत्र है उनका यह निष्कर्ष कि अमेरिका के लोग स्थानीय हितों की रक्षा के लिए आपस में सहयोग करने के लिए विशेष रूप से एकजुट हो जाते हैं। कुछ समय तक स्वतंत्रता और समानता के बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयासों पर निर्भर रहा है। इस विचार ने पूर्वी यूरोप में नागरिक समाज पर काफी साहित्य को प्रोत्साहित किया। *टाकविले* ने नागरिकों की क्षमताओं को बढ़ाने में सहायता देने वाले साहचर्य के अनुभवों को अधिकतम महत्व दिया।

'नागरिक समाज' का विचार उदार लोकतांत्रिक विचार प्रबंधन से मूलभूत रूप से जुड़ा है जिसमें सामाजिक विचारों की बहुलता का समर्थन किया गया है। नागरिक समाज की धारणा कतिपय विशेषताओं से जुड़ी है जैसेः

स्वैच्छिक सहभागिता और राज्य से पृथक्करण और स्वायत्तता। *लैरी डायमंड* की नागरिक समाज की परिभाषा अत्यंत व्यापक है जिसे उद्धृत किया जा सकता है "नागरिक समाज ... संगठित सामाजिक जीवन का क्षेत्र है जो स्वयंसेवी, स्वउत्पादक (आम तौर पर) आत्मनिर्भर, राज्य से स्वायत्त हो तथा विधिक आदेश अथवा साझा नियमों के एक समुच्चय से बंधा हो। यह सामान्य समाज से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें ऐसे नागरिक सम्मिलित हैं जो अपने हितों, मनोभावों और विचारों को व्यक्त करने, सूचना का आदान-प्रदान करने, पारस्परिक लक्ष्यों को प्राप्त करने, राज्य के समक्ष मांग रखने और राज्य के अधिकारियों को उत्तरदायी बनाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में सामूहिक रूप से कार्य करते हों। नागरिक समाज निजी क्षेत्र और राज्य के बीच स्थित एक मध्यवर्ती अधिसत्ता है।

विकासशील देशों में नागरिक समाजों को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। मजदूर संघ (Trade Union), व्यावसायिक और पेशेवर संघों जैसे आधुनिक हित समूहों और रक्त संबंध, न जातीयता, संस्कृति या धर्म पर आधारित परंपरागत संगठनों के बीच, विशिष्ट रूप से राजनीतिक आकांक्षाएँ और भूमिका रखने वाले संघों और राजनीतिक शासन में परिवर्तित कर अथवा राजनीतिक समुदाय को पुनर्परिभाषित कर राजनीतिक बदलाव का उद्देश्य रखने वाले संघों के बीच, ट्रेड यूनियनों और व्यवसाय पेशेवर संगठनों जैसे अत्यंत संगठित और पूर्ण संसाधन युक्त हित समूहों और गैर सरकारी संगठनों या सामुदायिक संघों जिनकी भिन्न-भिन्न प्रचालन कार्यविधियाँ और संगठनात्मक उद्देश्य होते हैं।

नागरिक समाज संगठनों में व्यापक रूप से भिन्नता होती है जैसे (क) सामाजिक कर्त्ताओं के संगठन में संलग्न संगठन जिसमें महिला, श्रमिक, दलित आदि के संगठन

होते हैं, (ख) सरकार–समाज परस्पर संपर्कों में वशिष्ट समूहों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठन, (ग) समाज की ओर से सरकारी गतिविधियों की मानीटरिंग और मूल्यांकन करने वाले संगठन, (घ) अनेक अन्य संगठन जो विकासात्मक कार्यकलापों में रत हैं जिन्हें आमतौर पर विकास गैर-सरकारी संगठन कहा जाता है। नागरिक समाज संगठन राजनीतिक जीवन में एक सक्रिय और रचनात्मक भूमिका अदा करते हैं। वे अधिक उचित, अधिक ईमानदार, पारदर्शी, लोकतांत्रिक जवाबदेह शासन को बढ़ावा देते हैं जो विविधता और बहुलवाद के मामले में अधिक सहिष्णु होता है। वे स्वयं अपने संगठनों के भीतर इस प्रकार के शासन (Governance) को व्यक्त कर दूसरों के लिए अनुकरणीय आदर्श (Role Model) हो सकते हैं। नागरिक समाज सुशासन में सकारात्मक रूप से योगदान कर सकता है। ये हैं –

(क) लोकनीति एवं निर्णय निर्धारण

(ख) पारदर्शिता एवं सूचना

(ग) सामाजिक सक्रियता के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन

(घ) सरकारी प्रयासों का अनुपूरक बनना

(ङ) सामाजिक न्याय के लिए कार्य करना।

- नागरिक समाज संगठन विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्रों को राजनीति और सार्वजनिक मामलों में आर्थिक पूर्णता में भाग लेने के लिए संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।
- नागरिक संगठन सरकारी नीति के निर्माण और कार्यान्वयन के बारे में पारदर्शिता बढ़ाकर तथा सूचना की उपलब्धता में वृद्धि कर बेहतर शासन में योगदान कर सकते हैं। इन लक्ष्यों को बढ़ावा देने के बारे में नागरिक समाज के भीतर की गतिविधियों में विधायन सम्बन्धी मुद्दों के बारे में सूचना की खोज। प्रकाशन और प्रसार कानूनी प्रावधान, सार्वजनिक व्यय हेतु आवंटन, नीति और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन और विशेष जाँच पड़ताल शामिल हैं।
- नागरिक समाज समूह बदलती वन विकास नीति, दोषी अधिकारियों को स्थानान्तरित करने, निर्धनों और झुग्गीवासियों को आवास और चिकित्सा सहायता प्रदान करने आदि से विभिन्न सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सरकारों पर दबाव डालने के लिए नागरिकों को प्रायः सफलतापूर्वक संगठित करते हैं।
- नागरिक समाज संगठन विविध तरीकों से सार्वजनिक सेवाओं को आकार देने, वित्तपोषण करने और उन्हें डिलीवर करने में सीधे सरकार के साथ मिलकर कार्य कर योगदान कर सकते हैं।

चौथा क्षेत्र जहाँ नागरिक समाज सुशासन में योगदान कर सकता है वह सामाजिक न्याय अधिकारों और कानून के शासन के क्षेत्र में है।

भारत में सिविल समाज का उदय सामाजिक आंदोलन के कारण हुआ है। जब आजादी के वैसे लोगों को भी राजनीतिक सहभागिता का अवसर मिला जो कि पहले तमाम बुराईयों के कारण संभव नहीं था तब पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, कृषक आदि ने भारतीय लोकतंत्र द्वारा दिए गए अवसर को पाने का प्रयास करने लगे। भारत जैसे देश में नागरिकों की संगठित पहल अन्य रूपों में भी अभिव्यक्ति होती है। जैसे– जनांदोलन एवं जनसंघर्ष। *महात्मा गाँधी, विवेकानन्द* और *मदर टेरेसा* जैसे लोगों ने समय-समय पर ऐसे आंदोलनों को प्रेरणा प्रदान की है। *बाबा आम्टे, सुन्दर लाल बहुगुणा, पाण्डुरंग शास्त्री आधवले* के नेतृत्व में कुछ ऐसे ही जनान्दोलन आधुनिक भारत में नागरिक समाज की उभरती भूमिका को धार प्रदान करते हैं।

जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में भ्रष्टाचार के मुद्दें पर प्रारम्भ हुए बिहार के छात्रों के एक गैर-राजनीतिक आंदोलन ने अन्ततः केन्द्र में सत्ता परिवर्तन को जन्म दिया जनलोकपाल की मांग को लेकर *अन्ना हजारे* का आंदोलन तथा काले धन की विदेशों से वापसी को लेकर *बाबा रामदेव* का आंदोलन वर्ष (2011) देश के नागरिक समाज की ही उपज है। नागरिक समाज के कुछ निर्माणकारी घटक हैं :

- समुदाय आधारित संगठन
- गैर-सरकारी संगठन
- युवाओं के संगठन एवं समूह
- महिला संगठन एवं समूह
- धार्मिक संघ एवं समूह
- सहकारी समूह
- श्रमिकों के संघ
- किसानों के संघ एवं समुदाय

नागरिक समाज ने सदैव ही अपनी भूमिकाओं का सुचारू ढंग से निर्वहन किया है। प्रशासन और सरकार के साथ प्रत्यक्षतः संवाद स्थापित करने का प्रयास नागरिक समाज का रहा है। सकारात्मक पहलुओं पर सहयेाग साथ ही जिन बिन्दुओं पर सरकार से नागरिक समाज का मतभेद रहता है उन पर वह प्रशासन तथा सरकार का मुख्य विरोध भी करती है। इस सन्दर्भ में भारत में कई उदाहरण देखने को मिलते हैं यथा– *चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओं आन्दोलन*। ये आन्दोलन सफल हुए और नागरिक समाज के आगे प्रशासन को झुकना पड़ा और पर्यावरण संरक्षण अधिनियम

1986 पारित करना पड़ा। समकालीन परिपेक्ष्य में देखा जाए तो विगत् एक दशक में नागरिक समाज ने भारत में तीन बड़े आन्दोलन किए हैं –

1. भ्रष्टाचार निवारण और लोकपाल के लिए अन्ना आन्दोलन
2. CAA के विरोध में
3. किसान आन्दोलन 2020 से अद्यतन्

इन आन्दोलनों में अन्ना आन्दोलन ही सफल रहा और नागरिक समाज ने आन्दोलन से बाहर निकलकर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की सत्ता को हथिया लिया। सम्यक् दृष्टि से देखा जाए तो नागरिक समाज प्रशासन में निम्नांकित भूमिकाओं का निर्वहन करता है :

- नागरिक समाज का प्रथम कार्य राज्य की शक्तियों पर नियंत्रण बनाए रखना है। भारत, जो सदियों तक अंग्रेजों के अधीन रहने के बाद स्वतंत्र हुआ, में नौकरशाही आज भी परंपरागत औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रसित है। राजनीतिक दल एवं नेता भी जनता का विश्वास पाकर प्राप्त शक्ति के मद से चूर होकर अपने संवैधानिक दायित्व के पथ से बहुधा भटकते नजर आते हैं। ऐसे में नागरिक समाज के सदस्य इन पर नियंत्रण एवं संतुलन बनाकर इन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाये रखने को बाध्य करते हैं।
- राजनीतिक सहभागिता के मामले में भी सिविल सोसाइटी की भूमिका महत्वपूर्ण है। गैर सरकारी संगठन लोगों को उसके अधिकार, कर्तव्य एवं जिम्मेदारी के बारे में जो कि उन्हें लोकतांत्रिक नागरिक बनाता है, शिक्षा देकर राजनीति में सहभागी बना सकता है।
- नागरिक सामाजिक संगठन लोकतान्त्रिक जीवन के अन्य मूल्यों के विकास में भी कारगर हैं जैसे– संयम, आधुनिकता, समझौता और विरोधियों के विचारों के प्रति आदर आदि। बिना इन गुणों के भारत जैसे विविधता वाले देश में लोकतंत्र को मजबूत कर पाना काफी कठिन है।
- नागरिक समाज लोकतंत्र एवं मानवाधिकार प्रशिक्षण से भी काफी गहरे रूप से जुड़ा है। इस संदर्भ में लोक शिक्षा व्यवस्था के विकास एवं प्रसार तथा गुणवत्ता नियंत्रण में यह कारगर है।
- नागरिक समाज एक ऐसी जगह है जहाँ अलग-अलग हितों को एक साथ जोड़कर सामूहिक हित में बदल दिया जाता है। यह समाज अपने सदस्यों जैसे महिला, विद्यार्थी, कृषक, पर्यावरणविद्, ट्रेड यूनियन, वकील, डॉक्टर आदि के चिंताओं एवं आवश्यकताओं या जरूरतों के लिए लॉबिंग करता है।

- भारत जैसे देश में जहाँ विभिन्न संप्रदाय, धर्म, जाति, वर्ग आदि के लोग रहते हैं, वहाँ इनके बीच अपने धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के आधार पर एकजुटता लोकतंत्र को मजबूत नहीं कर पाएगा।
- नागरिक समाज भविष्य के राजनीतिक नेताओं के लिए प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में कार्य करता है। गैर सरकारी संगठन और अन्य इस तरह के समूह इस तरह के नये नेताओं को पहचान कर प्रशिक्षित कर सकता है।
- नागरिक सोसाइटी लोगों को महत्वपूर्ण लोक मुद्दों के बारे में सूचना प्रदान करता है। यह कार्य केवल मीडिया का न होकर ऐसे सामाजिक संगठनों का भी है।
- नागरिक समाज संगठन विवाद को खत्म करने में मध्यस्थता करके एवं अन्य तरह से सहायता देकर मदद कर सकता है।
- नागरिक समाज चुनाव प्रक्रिया पर पैनी नजर रखता है। इसलिए ये संगठन आपस में तारतम्य बिठाकर जो कि राजनीतिक दलों एवं प्रत्याशियों से किसी प्रकार का संबंध न रखते हुए, विभिन्न मतदान केन्द्र पर तटस्थ पर्यवेक्षकों को नियुक्त कर स्वतंत्र शांतिपूर्ण मतदान एवं मतगणना को सुनिश्चित करने पर जोर देता है।
- नागरिक समाज की भूमिका वहाँ और भी ज्यादा प्रासंगिक जान पड़ती है जहाँ तक सरकारी तंत्र की पहुँच नहीं होती है। बाजार कारक सामाजिक रूप से अंधे होते हैं इसके कारण सामान्यतः असमता, अन्याय एवं भ्रष्टाचार पनपता है। ऐसे में सिविल समाज लोगों को जागरूक बनाकर बाजार को भी सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों के प्रति आदर करने के लिए बाध्य करता है।
- नागरिक समाज वैसे हितों जो कि या तो प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं या फिर जिसकी अनदेखी की गयी है, के लिए एक उत्प्रेरक एवं वकालत करने का काम करता है।

भारत में 20 लाख से अधिक गैर-सरकारी संगठन है। रूस में हर वर्ष चार लाख और कीनिया में 120 गैर सरकारी संगठन बनाए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में अनुमानत 20 लाख निरपेक्ष संगठन हैं जिन्होंने 11 मिलियन से अधिक लोगों को नियोजित कर रखा है। भारत में लाभ निरपेक्ष क्षेत्र के संगठनों के पास सूचना एकत्र करने और उसका प्रसार करने के लिए कोई फेडरेशन या यूनियन नहीं है इसलिए उनकी संख्या अथवा उनके क्रियाकलापों के क्षेत्र के रूप में उनके कार्यों के पैमाने को आंकना बहुत कठिन है। इस प्रकार के मिलियन से अधिक संगठन हैं जो देश में समितियाँ न्याय अधिनियमों के तहत पंजीयत हैं। सामाजिक आर्थिक संस्थाओं का यह

विशाल जाल (नेटवर्क) बहुत से मुख्य सरकारी नीतिगत उद्देश्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है –

1. यह उत्पादकता और प्रतियोगिता क्षमता को बढ़ाने में सहायता दे सकता है।
2. यह समावेशी संपत्ति सृजन में योगदान दे सकता है।
3. सरकार की लोक केन्द्रस्थता को बढ़ा देता है।

भारत का संविधान सुस्पष्ट रूप से बोलने और विचारों की अभिव्यक्त करने और समितियों एवं साझेदारियाँ बनाने की स्वतंत्रता के अधिकार को अनुच्छेद 19 (1) के अंतर्गत अपने नागरिकों के मूल अधिकारों में से एक अधिकार मानता है और इसलिए सिविल सोसाइटी समूह और सामुदायिक संगठन बनाने को प्रोत्साहन देता है।[4] सिविल सोसाइटी संगठन राज्य और बाजार दोनों के रूढ़िगत स्थान से बाहर कार्य करते हैं लेकिन उनमें इन दोनों संस्थाओं को नागरिकों की जरूरतों और अधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाने के लिए उनसे बातचीत करने उन्हें मानने उन पर दबाव डालने की क्षमता है। बावजूद इसके नागरिक समाज के समक्ष निम्नांकित चुनौतियाँ उपस्थित होती हैं –

- नागरिक समाज के भीतर शक्ति और शक्ति असंतुलनों की चुनौती है। यह क्षेत्र जीवंत और अत्यधिक विधि है। इसमें लाखों डॉलर बजट वाले बड़े परार्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन और अत्यधिक सीमित संसाधन, सूचना तथा सीमित पहुँच और क्षमता वाले अत्यंत लघु नागरिक आधारित संगठन दोनों शामिल हैं।
- दूसरी चुनौती जो नागरिक समाज के भीतर की है संकीर्ण हितों और वृहत्तर लक्ष्यों के बीच की दूरी को कम करने की है।
- तीसरी आंतरिक चुनौती एक अधिक उचित और न्यायसंगत वैश्विक प्रणाली के लिए एक सुसंगत दृष्टि प्रस्तुत करने की है।
- चौथी चुनौती वैधता की चुनौती और पारदर्शिता एवं जवाबदेही से संबंधित मुद्दे की है।

भारत में नागरिक समाज का यद्यपि कोई उल्लेख नहीं है पर संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार यथा–संघ बनाने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार आदि अप्रत्यक्ष रूप से सिविल समाज की ओर इशारा करती है। इसके अतिरिक्त सिविल समाज की स्थापना के आधार के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद, प्रजातांत्रिक समाजवाद, नागरिकता के महत्व एवं योगदान को देखा जा सकता है। विधि का शासन (Rule of Law) भी नागरिक समाज के लिए आवश्यक है नागरिक समाज की भूमिका राज्य की नीतियों पर निर्भर है। इसलिए दोनों में किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है। तनाव के क्षण उस समय उत्पन्न होते हैं जब सरकार का रवैया टालमटोल

का हो एवं जनता सिविल समाज के अंतर्गत संगठित हो तथा अपने हितों के प्रति जागरूक हो। किसी भी लोकतंत्र के लिए एक आदर्श स्थिति यह है कि नागरिक समाज एवं राज्य एक साथ मिलकर कार्य करें।

संदर्भ सूची

1. त्रिपाठी, श्रीप्रकाश मणि (2011), 'समकालीन राजनीतिक चिन्तन', राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 90
2. वही, पृ0 458
3. अन्ना आन्दोलन और उनकी ताकत, www.dw.com
4. अनुच्छेद 19(i) भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2001

चीन के साथ सैन्य मोर्चा तथा भारतीय रक्षा क्षेत्र की उपलब्धियाँ

गाँधीजी राय

Ikjk'kk भारत और चीन का संबंध प्रारंभ से ही संदेहों और संभावनाओं के बीच चलता रहा है। 1954-55 में भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और चीनी प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई के बीच संपादित ip'khy संधि में भले 'हिंदी चीनी भाई-भाई' के नारे से उस समय का आकाश गुंजा हो, लेकिन अच्छे संबंधों की संभावनाओं के पीछे चीनी साजिश एवं षड्यंत्र के चलते दोनों देशों के संबंध आज बेहद तनावपूर्ण और संदेहों के घेरे में हैं और कभी भी दोनों देशों के बीच हिंसक युद्ध हो सकते हैं। इस आलेख में यह बताया गया है कि Mkdyke fookn में दोनों देशों की सेनाओं के बीच 73 दिनों की तनातनी के बाद भारत के सकारात्मक कूटनीतिक पहल के बावजूद चीन ने कभी भी भारत पर विश्वास नहीं किया। इस आलेख में सैन्य मोर्चे पर भारत और चीन की स्थिति के साथ-साथ यह बताने का प्रयास किया गया है कि रक्षा क्षेत्र के मामले में आज के नए भारत की कितनी प्रगति और उपलब्धियाँ हैं। आज भारत सरकार ujn eknh के कुशल नेतृत्व में पूरे देश तथा उसके हर भाग की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

भूमिका

1949 में चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना युद्धोत्तर अंतरराष्ट्रीय राजनीति की एक प्रमुख घटना थी। अमेरिका द्वारा साम्यवाद विरोधी रुख अख्तियार किए जाने के बावजूद चीन में साम्यवाद की विजय उसके लिए बहुत बड़ा सदमा था। उस समय भारत-चीन संबंध आज की तरह एशियाई राजनीति की एक बहुत बड़ी घटना थी। 1954-55 में दोनों देशों के बीच संपादित ip'khy संधि के बावजूद 20 अक्टूबर 1962 को भारत की उत्तरी सीमा पर चीन ने आक्रमण करते हुए 24 घंटों के अंदर ही Mkyk तथा f[kteku की भारतीय चौंकियों को छीन लिया। 25 अक्टूबर 1962 को चीनियों ने edegku j[kk से 14 मील दक्षिण में Rokx पर भी अधिकार जमा लिया। 21

नवंबर 1962 को एकपक्षीय युद्ध विराम की घोषणा कर चीन ने भारत के साथ बहुत बड़ा धोखा किया। तब से लेकर आजतक भारत और चीन के संबंध संदेहों और अविश्वासों के बीच संचालित हैं। आज दोनों देश अपने-अपने सैन्य मोर्चे की तैयारियों में लगे हैं। विदेश मंत्री **,l- t;'kdj** ने दोनों देशों के रिश्ते को सबसे खराब दौर की स्थिति कहा है। भारतीय सेना के करीब 50 हजार जवान पूर्वी लद्दाख में विभिन्न पर्वतीय स्थलों पर शून्य से नीचे तापमान पर पूरी सतर्कता और युद्ध की तैयारी के साथ डटे हुए हैं।[1] दोनों पक्षों के बीच विभिन्न स्तरों पर कई दौर की बातचीत हो चुकी है, लेकिन सीमा पर जारी गतिरोध का कोई ठोस समाधान नहीं निकल पाया है। चीन की तरफ से लगभग इतनी ही संख्या में **ih,y,** के जवान तैनात हैं।[2] उल्लेखनीय है कि चीन एक तरफ वार्ता का दिखावा कर रहा है तो दूसरी तरफ वह सीमा पर लगातार बुनियादी सैन्य ढाँचे को विकसित कर रहा है।

दोनों देशों के संबंधों की संक्षिप्त पृष्ठभूमि

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति में गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई और हरसंभव तरीकों से अपने पड़ोसियों के साथ संबंध सुधारना चाहा। 1949 में चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना हुई, जो युद्धोत्तर अंतरराष्ट्रीय राजनीति की एक प्रमुख घटना थी। यह अमेरिका के लिए एक बहुत बड़ी घटना थी, क्योंकि वह साम्यवाद विरोधी (containment of communism) की नीति पर चल रहा था। आज भी वैश्विक स्तर पर अमेरिका चीन को अपना दुश्मन मानता है। भारत ने हरसंभव प्रयास से चीन के साथ अपने संबंधों को मधुर बनाना चाहा। 1954-55 में चीनी प्रधानमंत्री **pkÅ-,u-ykb** तथा भारतीय प्रधानमंत्री **tokgjyky ug:** द्वारा संपादित **ip'khy** संधि के बाद भले दोनों देशों के संबंध 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के नारे से मधुर तो हुए, लेकिन 20 अक्टूबर 1962 को चीन द्वारा भारतीय सीमाओं पर अकस्मात आक्रमण से दोनों देशों की मैत्री शत्रुता में बदल गई। आज भी भारत के एक बड़े भूभाग पर चीन अधिकार जमाए हुए है। दोनों देशों के बीच व्यावहारिक रूप से मान्य सीमा **edegku j[kk** है जिसकी स्वीकृति अप्रैल 1914 में भारत–चीन और तिब्बत के प्रतिनिधियों के शिमला सम्मेलन में दी गई थी। उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश सरकार की ओर से शिमला सम्मेलन में भारत सचिव **gujh edegku** ने भाग लिया था। उस सम्मेलन में तिब्बत को **nk** भागों– आंतरिक तिब्बत और बाह्य तिब्बत में विभाजित कर दिया गया जिस पर **rhuk** प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किया और इसी को **edegku j[kk** कहा गया। जहाँ तक **yìk[k lhek** का संबंध है, भारत और चीन के बीच किसी संधि का उल्लेख नहीं मिलता। इस संबंध में भारत सरकार की मान्यता है कि व्यावहारिक दृष्टि से जिस सीमा तक भारत और चीन का अपना नियंत्रण रहा है और जिसे भारत हमेशा से अपने नक्शे में दर्शाता रहा है, वही परंपरागत **lhek j[kk** है। कश्मीर की उत्तरी सीमा का उल्लेख करते हुए अधिकारियों ने 1866 में चीन

को स्पष्ट लिखा था कि इसकी पूर्वी सीमा 80° पूर्वी देशांतर है। इस आलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि **vDlkbphu** भारतीय सीमा के अंतर्गत है और यही ऐतिहासिक परंपरागत सीमा है। कश्मीर राज्य के राजस्व विभाग के कागजात से भी इस बात की संपुष्टि होती है कि कश्मीर की सरकार ही आक्साईचीन के व्यापारिक मार्गों की रक्षा और मरम्मत करती आई है।[3] लेकिन, चीन सुनियोजित ढंग से सीमा विवाद को उग्र बनाता रहा और कहता रहा कि दोनों देशों के मध्य कभी भी सीमाओं का निर्धारण नहीं हुआ। 12 जुलाई 1962 को **xyoku ?kkVh** की भारतीय चौकी को चीनियों ने घेरे में ले लिया और 20 अक्टूबर 1962 को उसके द्वारा भारत पर आक्रमण से दोनों देशों में युद्ध प्रारंभ हो गया। तब से लेकर अबतक भारत और चीन के बीच सीमा विवाद को लेकर दिसंबर 2019 तक **22** दौर की निष्फल वार्ताएँ होने के बावजूद स्थिति आज काफी गंभीर हो गई है। भूटान की सीमा पर **Mkdyke** को लेकर 16 जून 2017 से 27 अगस्त 2017 तक दोनों देशों की सेनाओं के बीच 73 दिनों की तनातनी[4] समाप्त होते ही प्रधानमंत्री **ujsUnz eksnh** की पहल पर दोनों देशों में संबंध सुधारने और आर्थिक सहयोग बढ़ाने हेतु उनकी चीनी प्रधानमंत्री **'kh ftufiax** से अनौपचारिक वार्ताएँ 5 सितंबर 2017 को **f'k;keu** में संपन्न नौवें **fcDl f'k[kj** सम्मेलन[5] के दौरान और 27-28 अप्रैल 2018 को **oqgku** में होने के बावजूद चीनी हठधर्मिता के चलते कोई समाधान नहीं निकला। रक्षा मामले के विशेषज्ञ अवकाश प्राप्त मेजर जनरल **v'kksd egrk** का मानना है कि चीन सीमा विवाद का समाधान होने नहीं देना चाहता है। 5 अगस्त 2019 को जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाए जाने पर भारतीय संसद में गृह मंत्री द्वारा लद्दाख और अक्साईचीन के संबंध में दिए गए बयान के बाद चीन ने अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए इसे 'अस्वीकार' बताया था और लद्दाख के केंद्र शासित राज्य बनाए जाने के बाद कड़ा प्रतिरोध जताया था।[6] **Mkdyke fookn** के बाद भले भारत ने कूटनीतिक प्रयास से चीन से संबंध सुधारना चाहा, लेकिन डोकलाम विवाद से चीन चिड़ा हुआ है और अपने बढ़ते वर्चस्व पर खतरा मान रहा है।

गलवान घाटी में भारत और चीन के बीच सैन्य झड़प (15-16 जून 2020)

भारत-चीन संबंधों में गंभीर तनाव की स्थिति जून 2020 में उस समय उत्पन्न हो गई जब पूर्वी लद्दाख क्षेत्र में गलवान घाटी (Galwan Valley) में वास्तविक नियंत्रण रेखा पर अतिक्रमण को लेकर दोनों देशों की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। 15-16 जून 2020 की मध्यरात्रि में गलवान क्षेत्र में हुई हिंसक झड़प में **,d duy** सहित **20** भारतीय सैनिक शहीद हो गए। चीनी सेना के भी 47 जवान हताहत हुए। उल्लेखनीय है कि गलवान घाटी प्रारंभ से ही भारत के नियंत्रण में रही है। उस पर कब्जे के लिए चीन ने 1962 के युद्ध में भी प्रयास किया था किंतु यहाँ भारत का नियंत्रण बना रहा। 5 मई 2020 को भी **phuh ihiYl vkehZ** ने इस क्षेत्र में घुसपैठ की थी और उसके

बाद चीन ने इसे अपना क्षेत्र बताना शुरू कर दिया था। इस मुद्दे पर दोनों देशों के वरिष्ठ सैन्य कामांडरों की बैठक 6 जून 2020 को हुई थीं जिसमें दोनों देशों की सेनाएँ **okLrfod fu;=.k j[kk** से पीछे हटने को सहमत हो गई थीं। तत्पश्चात् सोची-समझी रणनीति और योजना के तहत चीनी सैनिकों ने समझौते का उल्लंघन करते हुए 15-16 जून की रात्रि में गलवान क्षेत्र पर अपना दावा ठोककर वास्तविक नियंत्रण रेखा को लेकर दोनों पक्षों में चल रही बातचीत को पेचीदा बना दिया। दोनों देशों के बीच हुई सैनिक झड़प मुख्यतः **iRFkjckt** तथा **ykBh MMk** के द्वारा ही हुई। उल्लेखनीय है कि दोनों देशों के बीच सीमा पर हथियार न चलाने के लिए संपन्न एक समझौते के तहत ही भारतीय सैनिकों ने इस संघर्ष में हथियार का इस्तेमाल नहीं किया। त्वरित कार्यवाही करते हुए 16 जून को ही तीनों सेनाध्यक्षों व चीफ ऑफ डिफेंस स्टॉफ के साथ रक्षा मंत्री **jktukFk fl ag** ने बैठक की।[7] चीनी रवैये पर रोष व्यक्त करते हुए भारतीय विदेश मंत्री **Mk- ,l t;'kdj** ने अपने चीनी समकक्ष **okax ;h** के साथ टेलीफोन पर 17 जून 2020 को वार्ता के दौरान स्पष्ट किया कि इस घटनाचक्र का गंभीर प्रभाव दोनों देशों के आपसी संबंधों पर पड़ेगा।[8] सीमा पर हुए इस टकराव के मामले में कठोर रुख अपनाते हुए प्रधानमंत्री **ujsUnz eksnh** ने अगले ही दिन एक बयान में कहा कि भारतीय जवानों का यह बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। उन्होंने चीन को स्पष्ट संकेत दिया कि भारत की शांति की कोशिशों को चीन कमजोरी न माने।

चीन के आक्रामक तेवर

हिमालयी क्षेत्र में 4057 किमी लंबी भारत-चीन सीमा पर चीन की दबंगई के चलते दोनों देशों के बीच सीमा विवाद का हल निकलने की उम्मीद को धक्का लगा है। 1986-87 के बाद भारत-चीन सीमा तनाव तब चरम पर पहुँच गया था जब चीन की सैन्य टुकड़ियाँ अरूणाचल प्रदेश के **lenkjkx p** क्षेत्र में नियंत्रण रेखा पार की थीं, जिसके कारण हलकी झड़पें शुरू हो गई थीं। इसकी प्रतिक्रिया में भारत ने अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम और लद्दाख क्षेत्र में चीन द्वारा भूभाग हड़पने के मंसूबों को नाकामयाब करने के लिए सुरक्षा की तैयारियाँ तेज कर दीं। सीमा उल्लंघन की हालिया घटनाएँ और वहाँ अतिरिक्त सुरक्षा बलों की तैनाती में 1962 के युद्ध के पूर्व के हालात की पुनरावृत्ति नजर आती है। भारत के एक पूर्व सेना प्रमुख के अनुसार वर्ष 2009 में चीन द्वारा सीमा का उल्लंघन जून में 21 बार, जुलाई में 20 बार तथा अगस्त में 24 बार किया गया। चीन द्वारा सीमा पार हस्तक्षेप की घटनाओं का बढ़ता ग्राफ दो सालों में लगभग दूना हो गया। 2006 में सीमा में घुसपैठ की 140 घटनाएँ हुई थीं, जबकि 2008 में 270।[9] जिस प्रकार चीन के साथ भारत का रक्षात्मक रुख आज (2020 में) दिखाई पड़ रहा है, उसी प्रकार 1954 के **ip'khy le>kSrk** में तिब्बत क्षेत्र के मसले पर भारत ने कूटनीतिक लाभ गँवा दिया था। तिब्बत मसले पर भारत को जो भी थोड़ी-बहुत बढ़त हासिल हुई थी, उससे भारत 2003 में हाथ धो बैठा जब उसने तिब्बत

को चीन के स्वायत्त क्षेत्र मानने के अपने रुख से पलटते हुए इसे चीन के भाग के रूप में स्वीकार कर लिया था। यह तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की एक बहुत बड़ी भूल साबित हुई और उस समय यही कहा गया कि उन्होंने जवाहरलाल नेहरू द्वारा तिब्बत के मामले में की गई गलती पर मुहर लगा दिया। इसी का नतीजा और हैरानी की बात यह है कि अब मुद्दा तिब्बत के संबंधों के आधार पर अरूणाचल प्रदेश पर चीन के दावों के रूप में सामने आ रहा है। 1962 में मुद्दा अक्साईचीन था, जबकि आज मुद्दा अरुणाचल प्रदेश खास तौर पर इसका **rokx {k=** बन गया है। प्रश्न है कि यदि चीन यह मानता था कि तवांग तिब्बत का अंग होने के चलते चीन का हिस्सा है तो फिर उसने 1962 के युद्ध में इस गलियारे पर कब्जा जमाने के बाद इसे मुक्त क्यों कर दिया था, जबकि लद्दाख क्षेत्र में इस युद्ध में जीते गए भूभाग उसने अपने कब्जे में रखा ? सामरिक मामलों के विशेषज्ञ **cãk pykuh** ने लिखा है, ''अनेक कारणों से चीन की दबंगई अन्य राष्ट्रों की तुलना में भारत के लिए अधिक चिंता का विषय है। एक तो चीन भारत में सीधे सैन्य दखल पर उतर आया है। वह भारत के लिए खतरे भी खड़े कर रहा है, जिनमें पाकिस्तान के साथ दीर्घकालीन सामरिक गठजोड़ भी शामिल है।––– वास्तव में सैन्य पत्रों के अनुसार चीन में यह धारणा मजबूत हो रही है कि 1962 सरीखे त्वरित हमले से जीत हासिल कर अपने प्रतिद्वंद्वी का कद छोटा किया जा सकता है''।[10] **cãk pykuh** का यह मानना सही है कि ''यदि भारत फिर से विश्वासघात का शिकार बनने से बचना चाहता है तो उसे चीन के संदर्भ में अपनी नीति को अधिक यथार्थपरक बनाना पड़ेगा। भारत को खुद को धोखे में रखने से बचना होगा, प्रतिरक्षात्मक क्षमताओं को बढ़ाना होगा और कूटनीतिक लाभ हासिल करने का प्रयास करना होगा''।

चीन के आक्रामक तेवर का पर्दाफाश तब होता है जब वह भारत के इलाकों में घुसकर पत्थरों पर 'चीन' लिख जाता है, स्थानीय भारतीय को मारपीट कर खदेड़ भगाता है और उनके रिहायशी इलाकों पर कब्जा कर लेता है। जम्मू एवं कश्मीर सरकार द्वारा केंद्र को भेजी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि चीन इंच–इंच कर भारतीय क्षेत्रों पर कब्जा कर रहा है। सीमा पर बड़े पैमाने पर चीन द्वारा बंकर आदि का निर्माण कार्य किया जा रहा है। वह ब्रह्मपुत्र नदी पर बांध निर्माण के तमाम दावों और प्रतिदावों के बीच **;kjyx&lkXik unh ifj;kstuk** आगे बढ़ाने में लगा हुआ है। खुफिया विभाग के पूर्व अधिकारी **,e- d- /kj** ने कहा कि ब्रह्मपुत्र नदी पर चीन की बाँध निर्माण परियोजना से उत्तरी भारत के अलावा बांग्लादेश भी प्रभावित होगा। *'इंस्टीट्यूट ऑफ डिफेंस रिसर्च एंड एनालिसिस'* (Institute of Defence Research and Analysis) के अनुसार, ब्रह्मपुत्र नदी पर बाँध के निर्माण का मुद्दा अंतरराष्ट्रीय सीमा से गुजरनेवाली नदी से जुड़ा हुआ है, लेकिन चीन ने बाँध निर्माण के संबंध में किसी भी पक्ष से चर्चा नहीं की। उल्लेखनीय है कि चीन ने 1997 में संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय जल संसाधनों

के गैर-नौवहन उपयोग संधि का भी अनुमोदन नहीं किया है। अब चीन की नीति में तिब्बत का उतना ही महत्त्व हो गया है जितना कि ताइवान का है। अरुणाचल प्रदेश के मसले को उठाकर चीन इसे भी ताइवान सरीखा पेश करने का प्रयास कर रहा है। चीन के अनुसार, अरुणाचल नया ताइवान है, जिसका चीनी राष्ट्र में पुनर्एकीकरण करना होगा। भारत-चीन संबंधों में तिब्बत हमेशा से मूल मुद्दा रहा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चीन भारत का पड़ोसी भौगोलिक रूप से नहीं रहा है, बल्कि 1951 में बंदूक के बल तिब्बत तक अपना विस्तार करके बना है। आज बीजिंग पश्चिम के उन देशों के साथ कूटनीतिक संबंध खराब करने में नहीं हिचकिचाता है जो **nykbZ ykek** के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध रखना चाहते हैं। चीन के व्यवहार में तीखेपन और आक्रामक तेवर का कारण भारत-अमेरिकी सामरिक एवं रणनीतिक साझेदारियाँ भी हैं जो **ujsUnz eksnh dky** में काफी मुखर होकर दिनोंदिन आगे बढ़ रही हैं।

भारत को क्या करना चाहिए ?

चीन के आक्रामक तेवर और उसके भारत को घेरने की नीति से स्पष्ट है कि वह हर उस तरीके का इस्तेमाल कर रहा है जिससे वह भारत पर बढ़त स्थापित कर सके। उसने पाक अधिकृत कश्मीर में अपने हजारों सैनिक तैनात किए हैं। अब गुलाम कश्मीर पर पाकिस्तान के दावे के साथ चीन भी सामने होगा। प्रश्न है कि ऐसे चीनी आक्रामकता के माहौल में भारत को क्या करना चाहिए ? अपनी सुरक्षा को मजबूत बनाए रखने और अपनी विदेश नीति को आजाद रखने की ताकत तभी मिलेगी जब हम अपनी सुरक्षा को आत्मनिर्भर और सुदृढ़ बनाएँगे। इसके लिए हमें खाद्यान्न के साथ-साथ बेहतर तकनीक के विकास के मोर्चे पर पूरी तरह आत्मनिर्भर रहना होगा। चीनी आक्रामकता की बढ़ती हुई घटनाओं में वृद्धि को देखकर उसकी विस्तारवादी नीति स्पष्ट होती है। इस संदर्भ में गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए भारत को चीन के साथ अपने आर्थिक संबंधों को सुदृढ़ करते हुए उसके अनुसार तैयार होना भी आवश्यक है। हमें यह यथार्थ स्वीकार करना होगा कि चीन इसलिए आँखें तरेरता रहता है, क्योंकि हमारा आंतरिक ढाँचा कमजोर है। चीन की चुनौती का सामना करते हुए सबसे सशक्त उपाय यही है कि भारत उन कमजोरियों को दूर करे, जो उसके आंतरिक ढाँचे में घर कर गई हैं। चीन एशिया से लेकर अफ्रीका और अमेरिकी महाद्वीप तक अपने आर्थिक और रणनीतिक हितों का जाल फैला रहा है। ऐसे में पाकिस्तान के सहारे भारत को घेरना और कश्मीर के बहाने भारत के लिए सिर दर्द पैदा करते रहना उसकी रणनीति का प्रमुख हिस्सा है। वह पाकिस्तान को एटमी रिएक्टर देकर पाक-अधिकृत कश्मीर में निर्माण कर रहा है। **ujsUnz eksnh** की मजबूत भारत की अवधारणा चीन के बढ़ते इरादों को संतुलित करने के लिए आवश्यक है। 15-16 जून की मध्यरात्रि में गलवान क्षेत्र में हुई झड़प में एक कर्नल सहित 20 भारतीयों की शहादत भारत के लिए बहुत बड़ा सबक है जिसे उसे कभी नहीं भूलना चाहिए।

सीमा पर हुए इस संघर्ष में जवानों के शहीद होने से पूरे देश में रोष की लहर व्याप्त है और देश बदला चाहता है। यही भारत की राष्ट्रीय एकता है।

सीमा पर दोनों देशों के बीच ताजा टकराव ने द्विपक्षीय संबंधों में भारी खट्टास की स्थिति उत्पन्न कर दी है। आर्थिक, वाणिज्यिक, राजनयिक और राजनीतिक संबंधों पर इसके दूरगामी परिणाम पड़े हैं। चीन की कुटिल चालों के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए पूरे देश में चीनी उत्पादों के बहिष्कार का सिलसिला जारी है। आर्थिक मोर्चे पर चीन से निपटने की दिशा में एक पहल करते हुए भारत सरकार ने एक बड़ा फैसला 29 जून 2020 को लेते हुए **fVd-Vkd** सहित चीन के **59 ,II** को प्रतिबंधित कर दिया। **phu ,II** को प्रतिबंधित करने वाली **byDVkfuDl o lpuk ik|kfxdh e=ky;** की 29 जून 2020 की विज्ञप्ति में कहा गया कि देश की एकता, अखंडता, संप्रभुता, सुरक्षा, रक्षा व सार्वजनिक व्यवस्था पर खतरा मानते हुए सरकार ने यह फैसला किया। पुनः 2 सितंबर 2020 को **118 ,II** तथा 24 नवंबर 2020 को **43 ,II** पर प्रतिबंध लगाया गया। उल्लेखनीय है कि चीनी कंपनियों के स्वामित्व वाले **,II** को प्रतिबंधित किए जाने के प्रति तीखी प्रतिक्रिया चीन सरकार की ओर से व्यक्त की गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि प्रतिबंधित किए गए **phu ,II** के भारतीय विकल्प भी स्टोर व प्ले स्टोर पर उपलब्ध हैं। **fVdVkd** को टक्कर देने के लिए स्वदेशी **Mitron** ***App*** *rFkk* ***Chingari App*** अच्छे विकल्प बताए जाते हैं। इसी तरह अन्य चीनी **,II** के लिए भी वैकल्पिक एप्स उपलब्ध कराए जा रहे हैं। इस कार्रवाई से आगे चलकर भारत आत्मनिर्भर बनेगा।

Pkhu l fuiVus d fy, ub j.kuhfr& भारत और चीन के बीच 1996 में एक **lhch,e** (Confidence-Building Measures- CBM) समझौता हुआ था जिसके मुताबिक बातचीत के दौरान सिपाही को दूसरे पक्ष के सिपाही की तरफ हथियार नहीं उठाना है। इसके अलावा, किसी प्रकार की घेराबंदी और रुकावट डालने पर पाबंदी जैसे नियम तय किए गए थे। केवल बैनर निकालने की बात तय की गयी थी। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1996 से लेकर 2013 तक इसे लागू करने की कोशिश की गई, लेकिन चीन की तरफ से कई बार नियमों का उल्लंघन किया गया और इस तरह के रवैये की वजह से ये नियम कायदे कामयाब नहीं हुए।[11] चीनी सेना द्वारा अतिक्रमण और उकसावे की वजह से वर्षों से दोनों सेनाओं के बीच तनातनी होती रही है। उनका मानना है कि अब भारत को भी अपने रुख में बदलाव लाना पड़ेगा। तनाव की स्थिति को देखते हुए लद्दाख में फौजी दस्तों की तैनाती बढ़ाई गई है। गाँधीवादी विचारक कुमार प्रशांत ने 1962 के बाद भारत और चीन के बीच लद्दाख की गलवान घाटी में हुई घटना दोनों देशों के बीच सबसे बड़ा मुठभेड़ माना है। भारत सरकार द्वारा 'चीन को अपने पाले में लाने की तमाम कोशिशों के बावजूद आज चीन हमलावर मुद्रा में है। डोकलाम से शुरू हुआ हमला गलवान घाटी तक पहुँचा है और यही चीनी बुखार है,

जो नेपाल को भी चढ़ा है।'[12] कुमार प्रशांत की मान्यता है कि चीनी बुखार उतार कर ही समस्या का स्थायी समाधान हो सकता है।

सैन्य मोर्चे पर आमने-सामने भारत और चीन

Mkdyke fookn (2017) के बाद भारत और चीन की सेनाएँ एक बार फिर आमने-सामने आ खड़ी हुई हैं। लद्दाख के गलवान घाटी और डेमचोक में बढ़ते तनाव के मद्देनजर दोनों देशों की तरफ से सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गयी है। लद्दाख की पैंगोंग झील, सिक्किम के नकुला और लद्दाख में गलवान घाटी और डेमचोक में सेनाओं के बीच झड़पें भी हुई हैं। दुनिया के दो सबसे बड़ी आबादी वाले देशों के बीच 14000 फीट (4270 मीटर) की ऊँचाई पर जारी तनातनी पर दुनिया की निगाहें लगी हुई हैं। पैंगोंग झील सीमा के समीप भारतीय सेना द्वारा सड़क निर्माण और आधारभूत संरचना के विकास पर काम किया जा सकता है। वास्तविक नियंत्रण रेखा के पास चीन ने इस बार कम-से-कम चार इलाकों में विवाद उत्पन्न कर दिया है। बढ़ते गतिरोध और सेनाओं के जमावड़े के मद्देनजर दोनों देशों के बीच वार्ता भी शुरू हो चुकी है। लेकिन, वार्ता की सफलता चीनी आचरण पर निर्भर है। वह इसे बदलने के लिए कतई तैयार नहीं है, क्योंकि सीमा विवाद को चीन एक रणनीतिक दबाव के हथियार के तौर पर इस्तेमाल करता आया है। वर्ष 2017 में भारत के साथ **Mkdyke xfrjk/k** के बाद से चीनी सेना ने अपने शास्त्रागार का विकास किया है, जिसमें टाइप 15 टैंक, जेड–20 हेलिकॉप्टर और जीजे–2 ड्रोन शामिल हैं, जो ऊँचाई वाले इलाके में उसके लिए लाभकारी स्थिति बनाते हैं। भले ही भारत चीन की सैन्य क्षमता की बराबरी नहीं कर सकता, लेकिन भारतीय सेना उसे **lcd** सिखाने की क्षमता रखती है। चीन के विदेश मंत्री ने भारत-चीन सीमा पर स्थिति के नियंत्रण में होने की बात कही है। इसलिए दोनों देशों के बीच युद्ध की संभावना तो नहीं है। लेकिन, चीन की हरकतों को देखते हुए भारत को सावधान रहने की जरूरत है। भारत को हर स्थिति के लिए अपनी सेना को तैयार रखना चाहिए। इस संबध में मेजर जनरल **v'kkd egrk** का यह मानना सही है कि भारत ने जिस तरह पाकिस्तान के विरूद्ध रक्षा रणनीति अपनाई है, उसी तरह हमें चीन के खिलाफ भी बड़े स्तर पर तैयारी करनी चाहिए।[13] उल्लेखनीय है कि 29-30 अगस्त 2020 की रात एक बार फिर भारतीय सैनिकों और चीनी सैनिकों के बीच झड़प हुई। हालाँकि भारतीय सैनिकों ने इस दौरान न केवल चीन को रोकने में कामयाबी हासिल की बल्कि उन्हें पीछे की ओर खदेड़ भी दिया।[14] **vkbVhchih** (ITBP- Indo-Tibatan Border Police) के कमांडर **vkbZch >k** ने बताया कि पूर्वी लद्दाख में **ih,y,** के साथ खूनी झड़प के बाद दोनों देशों के साथ तनाव चरम पर पहुँच गया है। अरुणाचल प्रदेश के संवेदनशील त्वांग सेक्टर में वास्तविक नियंत्रण रेखा पर जवान हाई अलर्ट पर हैं और आईटीबीपी ने जबरदस्त तैयारियाँ की हैं।[15]

उत्तरी सीमाओं पर चीन पर भारी भारतीय सेना

चीन द्वारा लगातार दी जा रही चुनौतियों के दौर में भारतीय सेना की ताकत का आकलन आवश्यक है। अंतरराष्ट्रीय सैन्य विशेषज्ञों का मानना है कि भारतीय सेना चीन की **ihiYl fycj'ku vkeh** से अपेक्षाकृत अधिक अनुभवी है। दोनों देशों के बीच तनाव के इस दौर में भारतीय वायु सेना द्वारा आपात स्थिति में 6,000 करोड़ रुपये से भी अधिक की लागत से रूस से 21 **fex-29** तथा 12 **, l ;-30 ,edvkb** लड़ाकू विमान खरीदने की प्रक्रिया तेज कर दी गई है। भारत को अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस फ्रांसीसी **jkQy foeku** मिल चुके हैं। कुछ अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों और सैन्य विशेषज्ञों के मुताबिक युद्ध की स्थिति में भारत उत्तरी सीमाओं पर चीन पर भारी पड़ सकता है। रक्षा विशेषज्ञों का मानना है कि भारतीय थलसेना हर परिस्थिति में चीनी सेना बेहतर और अनुभवी है, जिसके पास युद्ध का बड़ा अनुभव है भले ही चीन के पास भारत से ज्यादा बड़ी सेना और सैन्य साजो–सामान है, लेकिन आज के परिपेक्ष्य में विश्व में किसी के लिए भी इस तथ्य को नजरअंदाज करना संभव नहीं हो सकता कि भारत की सेना को अब धरती पर दुनिया की सबसे खतरनाक सेना माना जाता है और सेना के विभिन्न अंगों के पास ऐसे-ऐसे खतरनाक हथियार हैं, जो चीनी सेना के पास भी नहीं हैं। धरती पर लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के लिए भारतीय सेना की गिनती दुनिया की सर्वश्रेष्ठ सेनाओं में होती है। रक्षा मंत्री **jktukFk flg** ने भी पिछले सात महीनों से पूर्वी लद्दाख में भारत और चीन की सेनाओं के आमने-सामने होने पर चिंता जाहिर की है। हैदराबाद में डिंडीगुल वायु सैनिक अड्डे पर संयुक्त परेड को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ''कोविड-19 महामारी के दौरान चीन के रवैये ने उसके इरादों को जाहिर कर दिया। लेकिन, हमने साबित किया है कि भारत कमजोर नहीं है। यह नया भारत है जो सीमा पर उल्लंघन, आक्रामकता तथा किसी भी तरह की एकतरफा कार्रवाई का मुँहतोड़ जवाब दे सकता है''।[16]

वास्तविक नियंत्रण सीमा पर भौगोलिक स्थिति भारत के पक्ष में

जापान की एक आकलन के अनुसार हिंद महासागर के मध्य में होने के चलते चीन की तुलना में भारत की रणनीतिक स्थिति बेहद महत्त्वपूर्ण है और दक्षिण एशिया में भी भारत ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली है। अमेरिकी न्यूज वेबसाईट **lh,u,u** ने भी अपने प्रतिवेदन में बताया कि आज भारत की शक्ति पहले की तुलना में ज्यादा बढ़ गई है और यदि चीन के साथ भारत का युद्ध हुआ तो भारत का पलड़ा भारी रह सकता है। इसके साथ ही भारतीय सेना ऊँचाई वाले क्षेत्रों में लड़ाई के संबंध में अधिक माहिर है। **ckLVu** में हार्वर्ड केनेडी स्कूल के **cyQj lVj Qkj lkbl ,M bVju'kuy vQ; l** और **okf'kxVu** के एक **vefjdh lj{kk dn** के अध्ययन में इसका खुलासा किया गया है। रक्षा विशेषज्ञों की दृष्टि में भारत–चीन की भौगोलिक स्थिति भारत के हित में है। उनका कहना है कि यदि युद्ध हुआ तो तिब्बत के ऊँचे पठार से

उड़ान भरने वाले **t-10** और **t-11** लड़ाकू विमानों में न ज्यादा ईंधन भरा जा सकता है और न ही ज्यादा विस्फोट लादे जा सकते हैं। रक्षा विशेषज्ञों का कहना है कि चीनी वायु सेना आकाश में भारतीय वायु सेना की भाँति अपने विमानों में ईंधन भरने में सक्षम नहीं है। एक अन्य अध्ययन में बताया गया है कि तिब्बत तथा शिनजियांग में चीनी हवाई ठिकानों की अधिक ऊँचाई एवं कठिन भारतीय परिस्थितियों के चलते चीनी लड़ाकू विमान अपने पेलोड और ईंधन के साथ ही उड़ान भर सकते हैं। इससे विपरीत भारतीय लड़ाकू विमान पूरी क्षमता के साथ आक्रमण करने में माहिर हैं। आज की सही स्थिति यही है कि चीन के पास भारत से ज्यादा लड़ाकू विमान होने के बावजूद भारतीय लड़ाकू विमान **l[kkb&30 ,evkbZ** एवं **jkQ;y** का उसके पास कोई जबाब नहीं है, जो एक साथ 30 निशाने साधने में माहिर हैं। चीन के पास **l[kkb&30 ,ed,e foeku** होने के बावजूद वह एक साथ सिर्फ **nks** ही निशाना साध सकता है। जल, थल और नभ से परमाणु हमला करने में दोनों देशों की क्षमता के संबंध में स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट का मानना है कि भारत की तुलना में चीन ज्यादा ताकतवर है, क्योंकि भारत के 150 परमाणु हथियारों के मुकाबले उसके पास 320 हथियार है। लेकिन, दोनों देशों के बीच 'पहले प्रयोग नहीं' (No First Use) नीति के चलते इनके प्रयोग की संभावना नहीं के बराबर है।

भारतीय नौसेना की बढ़ती शक्ति

भारतीय नौसेना की ताकत दिनोंदिन बढ़ रही है। 2013 में नौसेना में शामिल किए गए **vkbZ,u,l foØekfnR;** **;q) ikr** पर तैनात कामोव–31, कामोव–28, हेलीकॉप्टर, मिग–29 के लड़ाकू विमान, ध्रुव, चेतक हेलीकॉप्टरों सहित **rhl** विमान और एंटी मिसाइल प्रणालियों के चलते इसके एक हजार किमी के क्षेत्र में दुश्मन देश के लड़ाकू विमान और युद्धपोत नहीं आ सकते। उल्लेखनीय है कि **59** किमी प्रति घंटा की गति से गश्त लगाने वाला यह युद्धपोत लगातार 100 दिनों तक समुद्र के भीतर विचरण कर सकता है। इसके साथ ही, 2012 में रूस से करीब एक अरब डॉलर के सौदे पर 10 वर्ष के लिए लीज पर ली गई भारतीय नौसेना की नाभकीय ऊर्जा से संचालित पनडुब्बी **vkbZ,u,l&pØ2** परमाणु हमला करने में बहुत आगे है। 43 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से पानी के अंदर 600 मीटर गहराई तक **rhu** महीने तक रह सकने वाली यह पनडुब्बी मिनटों में चीन और पाकिस्तान पर परमाणु आक्रमण करने में सक्षम है।

भारत और चीन की सैन्य शक्ति की तुलनात्मक स्थिति

यदि हम भारत और चीन की सैन्य शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन करें तो इसमें काफी अंतर दिखाई पड़ता है। जहाँ भारत का सैन्य बजट 4252 अरब का है वहाँ चीन का सैन्य बजट करीब 17327 अरब का है। चीनी **lSU; cy** में सक्रिय सैनिकों की संख्या जहाँ 23.35 लाख और रिजर्व सैनिकों की संख्या 5.1 लाख है वहाँ भारतीय

lU; cy में 13.25 लाख सक्रिय सैनिक और 11.55 लाख रिजर्व सैनिक तैनात हैं। जहाँ चीनी थल सेना में 7760 टैंक (2500 टाइप–96, 96ए, 96बी, 2360 टाइप–59, 800 टाइप–63, 500 टाइप–88, 500 टाइप 99, 500 टाइप–99ए, 300 टाइप–69, 300 टाइप–79), 9726 तोपें, 1710 स्वचालित तोपें, 1770 रॉकेट तोपें तथा 33000 बख्तरबंद वाहन हैं, वहाँ भारतीय थल सेना में 4426 टैंक (2410 टी–72, 1650 टी–90, 248 अर्जुन एमके–1, 118 अर्जुन एमके–2), 5067 तोपें, 290 स्वचालित तोपें, 292 रॉकेट तोपें तथा 8600 बख्तरबंद वाहन शामिल हैं। चीन की नौसेना में दो विमानपोत, 36 विध्वंसक पोत, 54 लड़ाकू युद्धपोत, 42 लड़ाकू जलपोत, 76 पनडुब्बियाँ, 220 गश्ती युद्धपोत और 714 समुद्री बेड़े हैं। उसके पास 28 टाइप–054ए, 13 टाइप–053 और दो टाइप–054 युद्धपोत और 18 टाइप–039ए, 17 टाइप–035, 13 टाइप–039, 12 किलो तथा छह टाइप–093 पनडुब्बियाँ हैं, जबकि भारतीय ukl uk में दो विमानपोत, 11 विध्वंसक पोत, 15 लड़ाकू युद्धपोत, 24 लड़ाकू जलपोत, 15 पनडुब्बियाँ, गश्ती युद्धपोत और 295 समुद्री बेड़े शामिल हैं। भारत के पास युद्धपोतों में छह तलवार, तीन शिवालिक, तीन ब्रह्मपुत्र और तीन गोदावरी श्रेणी के हैं तथा पनडुब्बियों में नौ सिंधुघोष, चार शिशुमार, एक चक्र, एक अरिहंत श्रेणी की हैं। चीनी वायुसेना में कुल 4182 एयरक्राफ्ट हैं, जिनमें 1150 फाइटर एयरक्राफ्ट, 629 मल्टीरोल एयरक्राफ्ट, 270 हमलावर एयरक्राफ्ट, 1170 हेलीकॉप्टर हैं जबकि भारतीय वायुसेना में कुल 2216 एयरक्राफ्ट हैं, जिनमें 323 फाइटर एयरक्राफ्ट, 329 मल्टीरोल एयरक्राफ्ट, 220 हमलावर एयरक्राफ्ट तथा 725 हेलिकॉप्टर सम्मिलित हैं। जहाँ चीन के पास 558 चेंगडू जे–7, 277 शेन्यांग जे–11, 143 शेन्यांग जे–8 फाइटर एयरक्राफ्ट और 266 चेंगडू जे–10, 28 चेंगडू जे–20, 21 चेंगडू जे–15, 24 सुखोई एसयू– 35 एस मल्टीरोल एयरक्राफ्ट हैं वहाँ भारत के पास 245 मिग–21 तथा 78 मिग–29 फाइटर एयरक्राफ्ट और 230 सुखोई एसयू–30 एमकेआई, 45 मिराज 2000, 45 मिग 29 के, नौ एचएएल तेजस मल्टीरोल एयरक्राफ्ट हैं। चीनी सेना के पास 2650 jkdV ikt DVj हैं, जबकि भारत के पास इनकी संख्या 266 है। इसके साथ ही, चीनी वायु सेना में 3.3 लाख सैनिकों की तुलना में भारतीय वायुसेना में करीब 1.4 लाख सैनिक हैं। इसी प्रकार, चीनी कॉम्बैट एयरक्राफ्ट की संख्या जहाँ करीब 1900 है वहाँ भारत के पास 900 कॉम्बैट एयरक्राफ्ट हैं।

भारत और चीन की सैन्य शक्ति की तुलनात्मक स्थिति से स्पष्ट है कि चीन के पास भारत के मुकाबले में दो गुना लड़ाकू और इंटरसेप्टर विमान हैं और भारत से 10 गुना ज्यादा रॉकेट प्रोजेक्टर हैं। इसके बावजूद, भारत का पड़ला उसपर भारी है, क्योंकि भारतीय लड़ाकू विमान चीन के मुकाबले ज्यादा प्रभावी हैं। पिछले कुछ दशकों में भारत ने चीन से लगी सीमाओं पर कई हवाई पट्टियों का निर्माण किया है जहाँ से भारतीय फाइटर जेट आसानी से उड़ान भर सकते हैं। भारत के राफेल मिराज–2000

और एसयू–30 जैसे जेट विमान किसी भी मौसम और परिस्थिति में उड़ान भर सकने में सक्षम हैं जबकि चीन के जेट विमानों– **t&11** और **,l;&27** में इतनी शक्ति नहीं है। इनके अतिरिक्त, **fpud** और **vikp** जैसे अत्याधुनिक हेलीकॉप्टर भी चीन से जंग में उस पर भारी पड़ेंगे। भारत की शक्तिशाली मिसाइल **cãkl** भी युद्ध का नक्शा बदलने में मददगार हो सकता है, जिसकी रफ्तार 952 मीटर प्रति सेकेंड होने से दुश्मन के रेडार भी इसके सामने फेल हो जाते हैं।

भारतीय रक्षा क्षेत्र की उपलब्धियाँ

नरेंद्र मोदी सरकार भारत तथा उसके प्रत्येक भाग की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कृतसंकल्प है। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह का यह कहना कि नया भारत आक्रामकता तथा किसी भी तरह की एकतरफा कार्रवाई का मुँहतोड़ जबाव देने में सक्षम है, इस बात की ओर संकेत करता है कि भारत रक्षा क्षेत्र के मामले में हर तरह की मुश्किलों का सामना करने में सक्षम है। भारतीय रक्षा मंत्रालय की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं–

1. *'स्लीनेक्स–20'***&** भारतीय नौसेना (Indian Navy) एवं श्रीलंका की नौसेना (Sri Lanka Navy) का संयुक्त वार्षिक द्विपक्षीय समुद्री अभ्यास 'स्लीनेक्स–20' का आठवाँ संस्करण 19 से 21 अक्टूबर 2020 तक त्रिंकामाली श्रीलंका के तट पर आयोजित किया गया।
2. *स्वदेशी रूप से विकसित एंटी रेडिएशन मिसाइल (रुद्रम) का सफलतापूर्वक परीक्षण***&** 9 अक्टूबर 2020 को नई पीढ़ी के एंटी रेडिएशन मिसाइल (रुद्रम) का ओडिशा के तट से दूर **0ghyj }hi** पर रेडिएशन परीक्षण सुखोई–30 एमकेआई फाइटर एयरक्राफ्ट से किया गया। इस मिसाइल को 'लॉन्च प्लेटफॉर्म' के रूप में सुखोई एसयू–30 एमकेआई विमान में एकीकृत किया गया है।
3. *डीआरडीओ के लेजर गाइडेड एटीजीएम का सफल उड़ान परीक्षण–* 1 अक्टूबर 2020 को स्वदेशी रूप से निर्मित **,Vhth,e** को लंबी रेंज पर स्थित एक टारगेट को भेदते हुए सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया।
4. *ब्रह्मोस मिसाइल का सफल परीक्षण–* 30 सितंबर 2020 को स्वदेशी बूस्टर और एयरफ्रेम सेक्शन के साथ ही कई अन्य 'मेड इन इंडिया' उप प्रणालियों से युक्त सतह से सतह तक मार करने वाली सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल **cãkl** का ओडिशा में आईटीआर, बालासोर से निर्धारित रेंज के लिए सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया। उल्लेखनीय है कि मई 2019 में भारतीय वायु सेना ने **cãkl** मिसाइल के हवाई प्रारूप का SU-30 MKI लड़ाकू विमान से सफल परीक्षण किया था।

5. *तेजस एफओसी विमान भारतीय वायुसेना में शामिल–* 27 मई 2020 को वायु सेना स्टेशन सुलूर में तेजस एमके–1 एफओसी विमान को भारतीय वायुसेना में सौंपा गया।

6. *आरएआईडीईआर–एक्स का अनावरण–* 1 मार्च 2020 को **j{kk vuqla/kku ,oa fodkl laxBu** (डीआरडीओ) एवं आईआईएससी बैंगलोर द्वारा **jsMj&,DI** (आरएआईडीईआर–एक्स) नामक एक नए विस्फोटक डिटेशन डिवाइस का अनावरण किया गया। रेडर–एक्स में एक दूरी से विस्फोटकों की पहचान करने की क्षमता है।

7. *रक्षा मदों के आयात पर प्रतिबंध–* रक्षा मंत्रालय ने 9 अगस्त 2020 को 101 रक्षा उपकरणों, हथियारों एवं गोला बारूद के आयात को चरणबद्ध तरीके से प्रतिबंधित करने का निर्णय लिया ताकि आत्मनिर्भर भारत (Make in India) अभियान के तहत इनका विनिर्माण देश में ही किया जा सके।

भारतीय थल सेना

डीआरडीओ द्वारा विकसित टैंकरोधी निर्देशित मिसाइल **ukx** का पोखरण फील्ड फाइरिंग रेंज का 7-18 जुलाई 2020 को सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया। इसमें सभी मौसमों में दिन या रात में दुश्मन के ताकतवर टैंकों को घेरने की शक्ति है। दिसंबर 2019 में भारतीय और नेपाल की सेना के बीच द्विपक्षीय वार्षिक सेनाभ्यास (सूर्यकिरण) कर आयोजन किया गया। 26 मार्च–8 अप्रैल 2020 के बीच भारत और श्रीलंकाई सेना के बीच 14 दिवसीय सैन्याभ्यास (मित्रशक्ति) का आयोजन किया गया। उल्लेखनीय है कि रक्षा मंत्रालय ने 28 सितंबर 2020 को 2,290 करोड़ रुपये से हथियार एवं रक्षा उपकरण खरीदने के एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इसके तहत पाकिस्तान एवं चीन की सीमा की निगरानी पर तैनात सैनिकों के लिए अमेरिका से 780 करोड़ रुपये से 72,000 Sig Saner Assault राइफलें खरीदे जाने का भी निर्णय लिया गया है। पैदल सेना के आधुनिकीरण कार्यक्रम के अंतर्गत सात लाख राइफलें, 44,000 हल्की मशीनगनें तथा लगभग 44,600 कार्बाइन खरीदी जा रही हैं।

48 fdeh rd jsat okyh gkfoRtj rksi dk Vsk;y lQy& रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) द्वारा विकसित स्वदेशी **gkfoRtj ,Vh,th,l rksi** का बालासोर में ट्रायल सफल रहा है। एटीएजीएस के फील्ड ट्रालय के दौरान संगठन के वैज्ञानिक और प्रोजेक्ट डायरेक्टर शैलेंद्र वी गढ़े ने बताया कि ये अबतक भारत की सबसे बड़ी ताकत रही बोफोर्स समेत दुनिया की किसी भी तोप से बेहतर है। इसमें काफी तेज माना जाने वाला इजरायल का गन सिस्टम एटीएसओसी भी है। यह 48 किमी तक लक्ष्य साध सकती है। यह तोप भारतीय सेना की 1800 आर्टिलरी गन सिस्टम की जरूरत को पूरा करने में सक्षम है। डीआरडीओ के मुताबित इसके बाद

विदेश से तोपें मंगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। उल्लेखनीय है कि मारक क्षमता ज्यादा होने से युद्ध में दुश्मन के हमले से भी से तोप बचे रहेंगे।[17]

भारतीय वायुसेना के प्रमुख लड़ाकू विमान एवं हेलिकॉप्टर

भारतीय वायुसेना विश्व की सबसे बड़ी चौथी वायुसेना मानी जाती है। फ्रांस के अत्याधुनिक व कहर ढाने वाले **jkQy** विमान और रूस के 'सुपर सुखोई' विमान भारतीय वायुसेना की शोभा बढ़ा रहे हैं। स्वदेश निर्मित लड़ाकू विमान **r|t l** का भारतीय वायुसेना में शामिल होने से वायुसेना की ताकत में अभूतपूर्व इजाफा हुआ है। आज करीब 2,000 से अधिक लड़ाकू विमान भारतीय वायुसेना में शामिल हैं। वायुसेना में सम्मिलित प्रमुख लड़ाकू विमान एवं हेलिकॉप्टर इस प्रकार है– **1-** चीता हेलिकॉप्टर **2-** चेतक हेलिकॉप्टर **3**. एमआई–17 वी 5 हेलिकॉप्टर **4-** एमआई–26 हेलिकॉप्टर **5-** एमआई–25/एमआई–35 हेलिकॉप्टर **6-** एवरो फाइटर जेट **7-** डोर्नियर **8-** आईएल–76 **9-** बोइंग C–17 ग्लोबमास्टर **10-** तेजस **11-** फाइटर जेट जगुआर **12-** मिग 21 **13-** मिग–27 लड़ाकू विमान **14-** मिग–29 **15-** मिराज–2000 **16-** एस यू–30 एमकेआई **17-** राफेल **18-** सी 130 जे तथा **19-** एम्ब्राएर।

निष्कर्ष

भारत और चीन दोनों एशिया की बड़ी शक्तियाँ हैं। 1962 के चीनी युद्ध के समय से ही दोनों के संबंध खराब हैं। संबंध सुधारने तथा सामान्य बनाने में सीमा विवाद सबसे बड़ी बाधा है। सीमा विवाद के समाधान के लिए 2020 तक **22** वार्ताएँ हो चुकी हैं और अभी भी दोनों पक्ष वार्ता जारी रखने के पक्ष में हैं। दोनों देशों के बीच आर्थिक, तकनीकी और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने का संकल्प लिए जाने के बावजूद डोकलाम विवाद (2017) के बाद दोनों के संबंधों में गंभीर गिरावट आई है। 29–30 अगस्त 2020 की रात पूर्वी लद्दाख में पैंगोंग झील के पास चीनी सैनिकों ने 75 दिनों के अंतराल के बाद एकबार पुनः जिस तरह दुस्साहस का परिचय दिया, इससे स्पष्ट हो गया कि चीन पर कभी भी भरोसा नहीं किया जा सकता। चीन की चुनौती का सामना करने के लिए भले ही सैन्य मोर्चे पर खड़ा भारत अपनी बढ़ती सैन्य शक्ति के बुते उसका मुकाबला करने के लिए तैयार है, लेकिन अन्य स्तरों पर भी भारत को सुदृढ़ करके चीन के मुकाबले के लिए तैयार रहना है। सैन्य मोर्चे पर सारी तैयारियों के बावजूद भारत को यह महसूस करना होगा कि देश में शासन-प्रशासन के कामकाज के जो तौर-तरीके रहे हैं, वे प्रगति की राह में बाधाएँ डालने का काम कर रहे हैं। भारत को यह यथार्थ स्वीकार करना होगा कि चीन इसलिए आँखें तरेरता रहता है, क्योंकि हमारा आंतरिक ढाँचा कमजोर है और प्रायः सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार के गंभीर परिणाम सामने आने लगे हैं। चीन की चुनौती का सामना करने के लिए सबसे सशक्त उपाय यही है कि भारत उन कमजोरियों को दूर करे, जो उसके आंतरिक ढाँचे से घर कर

गई हैं। यदि ऐसा नहीं किया गया तो आगे चलकर भारत खुद को चीन के समक्ष अपने को कमजोर पाएगा। चीन एशिया से लेकर अफ्रीका और अमेरिकी महाद्वीप तक अपने आर्थिक और रणनीतिक हितों का जाल फैला रहा है। ऐसे में पाकिस्तान के सहारे भारत को घेरना और कश्मीर के बहाने भारत के लिए सिरदर्द पैदा करते रहना उसकी रणनीति है और भविष्य में भी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. *दैनिक जागरण* (पटना, 9 दिसंबर 2020), पृ. 17
2. उपरोक्त
3. डॉ. एन. के. श्रीवास्तव : *'भारत की विदेश नीति'*, पृ. 134
4. *दैनिक भास्कर* (पटना, 29 अगस्त 2017), पृ. 13
5. *दैनिक भास्कर* (पटना, 6 सितंबर 2017), पृ. 1
6. मेजर जनरल (रिटा.) अशोक मेहता का आलेख, 'चीन नहीं चाहता सीमा विवाद का हल', *प्रभात खबर* (पटना, 7 जून 2020), पृ. 8
7. *दैनिक जागरण* (पटना, 17 जून 2020), पृ.1
8. *हिन्दुस्तान* (पटना, 18 जून 2020)
9. गाँधीजी राय, *'अंतरराष्ट्रीय राजनीति'*, द्वितीय संस्करण (पटना, भारती भवन, 2014), पृ. 392
10. गाँधीजी राय द्वारा उद्धृत, उपरोक्त, पृ. 393
11. रक्षा विशेषज्ञ अशोक मेहता, रिटायर्ड मेजर जनरल का आलेख, ''चीन से निबटने के लिए नई रणनीति, *प्रभात खबर* (पटना, 19 जून 2020), पृ. 8
12. कुमार प्रशांत का आलेख, 'उतारना होगा चीनी बुखार', उपरोक्त
13. रक्षा विशेषज्ञ अशोक मेहता, रिटायर्ड मेजर जनरल, ''चीन नहीं चाहता सीमा विवाद का हल'', पूर्वोक्त
14. India-China Clash——, hindi.news18.com
15. *आज* (पटना, 27 दिसंबर 2020), पृ. 1
16. *हिन्दुस्तान* (पटना, 20 दिसंबर 2020), पृ. 22
17. *दैनिक भास्कर* (पटना, 20 दिसंबर 2020), पृ. 1

वैश्वीकरण का राज्य एवं भारतीय लोक प्रशासन पर प्रभाव

उमेश कुमार

Ikjk'k% वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण की संकल्पना निजीकरण तथा उदारीकरण से निकटता के साथ जुड़ी हैं। निजीकरण वैसी आर्थिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत निवेश की खुली छूट होती है; व्यक्ति अपनी इच्छा से अधिक-से-अधिक निवेश कर अधिक-से-अधिक उत्पादन करके लाभ को प्राप्त कर सकता है।[1] निजीकरण के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व को समाप्त किया जाता है तथा निजी स्वामित्व का विस्तार होता है; उत्पादन प्रणाली पर सरकार का नियन्त्रण नहीं होता अथवा यदि होता है तो उसे शिथिल किया जाता है।[2] निजीकरण की इस प्रक्रिया से उदारीकरण का जन्म होता है, जिसके अन्तर्गत मानवीय जीवन के सभी आयाम प्रभावित होते हैं, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में खुलापन आता है; आर्थिक जीवन में अधिक-से-अधिक निजीकरण को बढ़ावा दिया जाता है तथा राजनीतिक जीवन में सरकार व राज्य की भूमिका में कमी आती है; सरकार का कार्य व दायित्व केवल कानून और व्यवस्था की स्थापना से सम्बन्धित हो जाता है। निजीकरण और उदारीकरण का प्रचार-प्रसार व प्रभाव जब सम्पूर्ण दुनिया की व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है तो उसे ही वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण कहते हैं।

प्रस्तावना

वर्तमान समाज में लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका को सामान्य रूप में स्वीकार किया जाता है तथा यह भूमिका राज्य के कार्यों के साथ-साथ और अधिक व्यापक एवं महत्वपूर्ण होती जा रही है। 19वीं सदी की 'अहस्तक्षेप राज्य', 20वीं सदी में 'लोक कल्याणकारी राज्यों के रूप में प्रस्तुत हो गई तथा मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से इसका सम्बन्ध हो गया। राज्य के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि के साथ-साथ स्वाभाविक रूप से लोक-प्रशासन का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया। लोक प्रशासन के कार्य-क्षेत्रों का

विस्तार एक सर्वव्यापी प्रवृत्ति है जो विकासशील, विकसित तथा अविकसित देशों में भी दृष्टिगोचर होती रही है।[3]

लोक-प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका को सर्वव्यापी रूप में स्वीकार करने के बावजूद भिन्न-भिन्न आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था वाले देशों में लोक प्रशासन की भूमिका में भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है। विकासशील देशों में जो भूमिका लोक प्रशासन को निभानी पड़ती है, वह पश्चिमी देशों में लोक प्रशासन के द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका से अधिक महत्वपूर्ण, जटिल और चुनौतियों से परिपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण ने विकासशील देशों के समक्ष कुछ विशेष नवीन चुनौतियों को खड़ा कर दिया है।

विकासशील देशों की समस्याएँ विकसित देशों की समस्याओं से भिन्न है। लगभग सभी विकासशील देश द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशवादी शक्तियों से मुक्त हुए हैं, जिन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों की व्यापक समस्याओं को दूर करना है तथा समाज व राष्ट्र–निर्माण के दिशा में उन्हें बहुत आगे जाना है। इन देशों में लोक प्रशासन को विकास प्रशासन के साथ-साथ नियामकीय प्रशासन की दोहरी भूमिका निभानी होती है।

वैश्वीकरण एक व्यापक प्रक्रिया व व्यवस्था है, जिसकी शुरूआत व प्रसार निजीकरण सह उदारीकरण से हुआ है तथा इसने मानवीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। इसलिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि इससे राज्य भी प्रभावित होगा।

वर्तमान विश्व में वैश्वीकरण को एक सार्वभौमिक प्रक्रिया व व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। वस्तुतः निजीकरण एवं उदारीकरण के व्यापक अथवा विश्व व्यापक स्वरूप को ही वैश्वीकरण कहा जाता है। उदारीकरण की शुरूआत निजीकरण से होती है, जिसे बहुत हद तक एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के रूप में समझा जा सकता है। निजीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर वर्ग-विशेष और व्यक्ति-विशेष को स्वामित्व प्रदान कर दिया जाता है। जिसके पास जितनी सम्पत्ति होती है, वह उतना निवेश कर अधिक-से-अधिक मुनाफा अर्जित कर सकता है। निजीकरण के अन्तर्गत लाइसेन्स व नियन्त्रण जैसी प्रक्रियाओं को समाप्त या पूर्णतः शिथिल कर दिया जाता है। निजीकरण रूपी आर्थिक प्रक्रिया से जब मानव-जीवन के सम्पूर्ण आयाम नकारात्मक-सकारात्मक अथवा दोनों रूपों में प्रभावित होने लगता है, तब उसे उदारीकरण कहा जाता है। निजीकरण एवं उदारीकरण का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार व प्रभाव ही वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण है।

वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य की संरचना एवं कार्य में व्यापक परिवर्तन आया है, जो निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता हैः–

1. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राज्य के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया है। राज्य को लोक-कल्याणकारी राज्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसकी

भूमिका उसके नाम के अनुरूप था। वैश्वीकरण के आगमन ने राज्य की भूमिका को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। अब राज्य ने अपने लोक कल्याणकारी कार्यों के सम्पादन में कमी लानी शुरू कर दी है। दूसरे शब्दों में, वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य की भूमिका लोक कल्याणकारी राज्य के रूप में कम, सीमित व व्यक्तिवादी राज्य के रूप में अधिकाधिक दृष्टिगोचर हो रही है।

2. वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य बाजार-व्यवस्था के अनुरूप कार्य कर रहा है। कहना न होगा कि राज्य का झुकाव नवीन लोक प्रबन्ध की ओर हो चुका है। राज्य के द्वारा नवीन लोक प्रशासन के सिद्धान्तों मसलन सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक न्याय पर बल, ग्राहक केन्द्रित कार्यों को प्राथमिकता, मूल्य-सापेक्ष नीति-निर्धारण को बढ़ावा, उत्पादकता व प्रभावशीलता को केन्द्र में रखकर कार्यों के सम्पादन को बढ़ावा दिया जा रहा है। परन्तु अब राज्य विनौकरशाहीकरण, निजीकरण, पुनः चक्रीकरण तथा अधिकाधिक तकनीकीकरण को महत्वपूर्ण मान रहा है। स्पष्टतः वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य की भूमिका नवीन लोक प्रशासन से आगे बढ़कर नवीन लोक प्रबन्ध सदृश बन गई है।
3. वैश्वीकरण ने राज्य को अपनी लोक कल्याणकारी भूमिका से हटाकर सीमित व बाजार-उन्मुख भूमिका की ओर लौटने पर मजबूर कर दिया है। आज राज्य को जन-विरोधी तो नहीं, परन्तु पूँजीवादी समाज का हितैषी जरूर कहा जा रहा है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमान राज्य तथा निजी प्रशासन के बीच अधिक समीपता व समानता है। राज्य के द्वारा निजी प्रशासन के समान बाजार के नियमों को स्वीकार किया जा रहा है, जिससे राज्य बनाम बाजार परिचर्चा को बल मिला है अथवा शासन के पुनर्खोज सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। अब राज्य के सन्दर्भ में गेबलर व ऑसबोर्न की बात अधिक सटीक प्रतीत हो रही है।
4. वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य बाजार-उन्मुख, प्रबन्ध-उन्मुख तथा प्रभाव उत्पादकता-उन्मुख हुआ है। इसे निजी क्षेत्र का हितैषी, सहयोगी व प्रोत्साहक बताया जा रहा है। इसके बाद भी यह कहना सम्पूर्ण रूप से सही प्रतीत नहीं होता है कि राज्य की भूमिका बिल्कुल निजी प्रशासन के समान बन गई है। वास्तविकता तो यह है कि राज्य के द्वारा बाजार एवं समाज के बीच संतुलन की स्थिति को कायम किया जा रहा है। यहाँ यह कहना अधिक औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है कि वैश्वीकरण में राज्य के कार्य एवं भूमिका में कमी जरूर आई है, उसका महत्व पूर्ववत् है।
5. सामान्यतः वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य की भूमिका व कार्य को अधिक-से-अधिक नकारात्मक बताया जाता है, परन्तु इसकी भूमिका सकारात्मक भी

है। यदि आज राज्य के कार्य से निजी संगठनों के विकास को प्रोत्साहन मिल रहा है तो दूसरी ओर साधारण जनता के जीवन-स्तर में भी तुलनात्मक रूप से सुधार हुआ है। आज राज्य वैश्वीकरण के तकनीकी पक्षों को अपनाकर प्रभावी एवं पारदर्शी प्रशासन को कायम करने में सफल हुआ है। राज्य, नवीन लोक प्रबन्ध की मान्यताओं को स्वीकार करके, उनका समुचित प्रयोग करके गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी जैसी समस्याओं पर यथासंभव सफल हो रहा है। स्पष्टतः वैश्वीकरण ने राज्य की भूमिका को मानव विकास हेतु पारदर्शी प्रशासन-उन्मुख बनाया है।

6. वैश्वीकरण के कारण राज्य संसाधनों का पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय सन्दर्भ में आवश्यकता व अनिवार्यता के अनुरूप प्रयोग कर रहा है। राज्य मानवीय अभिक्षमता के अधिकाधिक विकास पर बल दे रहा है। अब राज्य को निजी प्रशासन के सफल व उत्पादकता वृद्धि सम्बद्ध नियमों को स्वीकार करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं है। वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य ने अपनी भूमिका को सेवा व लाभ के सिद्धान्तों पर आधारित कर दिया है।

निष्कर्षतः वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राज्य के द्वारा अपनी लोक कल्याणकारी भूमिका को सीमित किया जा रहा है; सब्सिडी समाप्त की जा रही है; अब राज्य पूर्व की भाँति गरीबों का हितैषी नहीं रहा। अब तो राज्य की भूमिका बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सदृश हो गयी है; राज्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का सहयोगी कम, एजेन्ट अधिक बन गई है। राज्य की वर्तमान भूमिका पूर्ववर्ती भूमिका यानी व्यक्तिवादी राज्य की भूमिका की ओर उन्मुख हो गया है। अब राज्य को किसी मार्क्सवादी तलवार से भय नहीं है; वह गरीबों की एकता को तोड़ चुका है तथा उन्हें अपने पक्ष में कर लिया है; राज्य ने अपने सांस्कृतिक हथियार ''अप-संस्कृतिकरण तथा उत्तर आधुनिकतावाद'' से मध्यम वर्ग के 'बौद्धिक प्रभुत्व' को कमजोर कर दिया है।

वैश्वीकरण एक व्यापक प्रक्रिया एवं व्यवस्था है, जिसका जन्म निजीकरण व उदारीकरण के व्यापक प्रचार-प्रसार से हुआ है। वैश्वीकरण की प्रकृति विश्वव्यापी, पूँजीवादी, बाजारीकृत, प्रबन्ध-उन्मुख, प्रतिस्पर्धात्मक तथा तकनीकी है, जिसने मानवीय जीवन के सभी पक्षों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसलिए लोक प्रशासन पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक एवं अनिवार्य प्रतीत होता है।

लोक प्रशासन पर वैश्वीकरण का प्रभाव (सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव) निम्नलिखित रूप से परिलक्षित होता हैः–

1. वैश्वीकरण के प्रभाव में लोक प्रशासन की परम्परागत मान्यताओं के प्रयोग एवं महत्व में कमी आई है, जबकि नवीन प्रशासनिक मान्यताओं का अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है तथा इसके महत्त्व में गुरूत्तर व उत्तरोत्तर रूप में विकास हुआ है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत राजनीति तथा प्रशासन का पृथक्करण

विषयक द्विविभाजन सिद्धान्त अब अस्वीकृत कर दिया गया है तथा नवीन लोक प्रशासन की प्रगतिशील मान्यताओं को स्वीकार किया जा रहा है।[4] इतना ही नहीं, वैश्वीकरण ने लोक प्रशासन के अन्तर्गत प्रबन्ध को अधिक महत्त्व प्रदान कर दिया है, तभी तो नवीन लोक प्रबन्ध आज लोक प्रशासन का महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय बन गया है। लोक विकल्प उपागम तथा नव कौशल परिपेक्ष्य के अध्ययन को भी वैश्वीकरण ने प्रोत्साहित किया है तथा गैर-सरकारी संगठन की भूमिका का अध्ययन भी लोक प्रशासन का विषय बन गया है।

2. वैश्वीकरण के परिपेक्ष्य में लोक प्रशासन के अन्तर्गत न केवल नवीन अवधारणाओं को स्वीकार किया जा रहा है तथा उनके अध्ययन को महत्व प्रदान किया जा रहा है, बल्कि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच की दूरियाँ कम हो रही है। अब एपलबी का कहना सही प्रतीत हो रहा है कि भविष्य में लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच असमानताएँ बहुत कम रहेंगी और समानताएँ बहुत अधिक रहेंगी। अब लोक प्रशासन के अन्तर्गत निजी प्रशासन की विशेषताओं को स्वीकार करने में कोई भी हिचक नहीं दिखाई देती है। लोक प्रशासन वैश्वीकरण के प्रभाव में अधिक बाज़ार-उन्मुख हुआ है।

3. लोक प्रशासन में 'लोक' शब्द का औचित्य लोक नीति के निर्धारण एवं क्रियान्वयन को लेकर है। वैश्वीकरण ने लोक नीति-निर्धारण एवं क्रियान्वयन को पूँजीवादी-उदारवादी सन्दर्भ में प्रभावित किया है। अब सरकार लोक नीतियों के निर्धारण में अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड व स्थिति को ध्यान में रखकर कार्य करती है। अब प्रशासन अपने औचित्य व प्रभाव के सन्दर्भ में सेवा की शर्त पर हानि उठाने को तैयार नहीं है। स्पष्टतः लोक नीति के स्वरूप एवं क्रियान्वयन को भी वैश्वीकरण ने प्रभावित किया है।

4. वैश्वीकरण के प्रभाव में लोक प्रशासन के अन्तर्गत कम लागत यानी मितव्ययिता और अधिक उत्पादन, पुनर्चक्रीकरण प्रक्रिया, विनौकरशाहीकरण, नियोजन में कमी लाकर विकास तथा पारदर्शी प्रशासन की स्थापना पर बल दिया जा रहा है। लोक प्रशासन में उत्पादकता एवं प्रभावशीलता में वृद्धि हेतु वैश्वीकृत वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं उसकी तकनीकों को अपनाया जा रहा है। इन सबका एक सकारात्मक प्रभाव यह हुआ है कि लोक प्रशासन ने सक्रिय एवं पारदर्शी प्रशासन के रूप में जनता के समक्ष अपनी उपस्थिति को दर्ज किया है।

5. वैश्वीकरण से समाज में पूँजीवादी हितों को बढ़ावा मिला है। इसका परिणाम सामाजिक-आर्थिक जीवन में असंतुलन तथा सांस्कृतिक प्रदूषण की समस्या है। इसलिए लोक प्रशासन इस दिशा में अधिक जागरूक व सक्रिय हो चला है। आज लोक प्रशासन अपना दायित्व समझता है कि वह समाज में सभी

प्रकार के संतुलन को कायम रखें। स्पष्टतः वैश्वीकरण के प्रभाव में लोक प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संतुलन का दायित्व महत्वपूर्ण हो गया है तथा भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण की दिशा में इसे अधिक सजग रहना पड़ रहा है।

6. वैश्वीकरण का लोक प्रशासन के कार्मिक एवं वित्तीय प्रशासन पर भी प्रभाव पड़ा है। अब तुलनात्मक रूप में वित्तीय प्रशासन को अधिक महत्त्व प्रदान किया जा रहा है। वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत प्रबन्ध विज्ञान की नवीनतम अवधारणाओं के अध्ययन को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस संदर्भ में यहाँ पुनः नवीन लोक प्रबन्ध का नाम लिया जा सकता है। वित्तीय प्रशासन के साथ-साथ कार्मिक प्रशासन की प्रकृति एवं संरचना भी लोक हित के सन्दर्भ में वैश्वीकरण से प्रभावित हुई है। आज वैश्वीकरण के सन्दर्भ में भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन एवं अन्य प्रकार की सेवा शर्तों का निर्धारण हो रहा है।

7. विकास प्रशासन की अवधारणा पर भी वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ा है। अब विकास प्रशासन का मूल्यांकन परिवर्तित परिस्थिति में शुरू हो गया है। भारत जैसे देश में प्रशासन विकास की रणनीति के साथ नियामकीय प्रशासन को बनाये रखने पर ध्यान दिया जा रहा है। भारत में विकास प्रशासन का स्वरूप समाजवादी अधिक तथा उदारवादी कम था, लेकिन वैश्वीकरण के प्रभाव में इसकी समाजवादी प्रकृत्ति में क्षय शुरू हुआ है तथा पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ पूर्व की तुलना में बहुत अधिक सशक्त हो रही हैं।

8. वैश्वीकरण की तकनीकी प्रकृति ने लोक प्रशासन में संचार, नेतृत्व, नियन्त्रण के क्षेत्र, प्रदत्त विधायन तथा जन भागीदारी के स्तर को न केवल व्यापक बनाया है, बल्कि उसे त्वरित व प्रभावी बना दिया है। आज लोक प्रशासन को पारदर्शी एवं प्रभावकारी बनाये रखने के लिए सकारात्मक एवं निरोधात्मक दोनों प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं, प्रशासनिक सुधार एक निरोधात्मक प्रयास है, जबकि 'सहभागी प्रबन्ध व्यवस्था' की स्थापना को एक सकारात्मक प्रयास के रूप में लिया जा सकता है।[5] स्पष्टतः वैश्वीकरण ने लोक प्रशासन में जन-सहभागिता को बढ़ावा दिया है तथा इसे सहभागी प्रबन्ध की ओर उन्मुख कर दिया है।

9. वैश्वीकरण से लोक प्रशासन की प्रकृति, संरचना, कार्य तथा सभी कुछ कमोबेश प्रभावित हुआ है। अब टेलर की 'आर्थिक मानव' विषयक अवधारणा अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हो गई है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत नीतिशास्त्र के सिद्धान्त सैद्धान्तिक बन गए है, व्यावहारिक रूप में लोक प्रशासन सेवा और लाभ के सिद्धान्त पर कार्य कर रहा है। यही कारण है कि लोक प्रशासन के अध्ययन में पुनः पर्यावरणीय, तुलनात्मक एवं परिस्थितिजन्य

अध्ययन को बढ़ावा मिल रहा है। आज लोक प्रशासन विविध रूप में नवीन अवधारणाओं तथा परिस्थितियों से प्रभावित हो रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण का लोक प्रशासन के विविध आयामों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

भारतीय प्रशासन पर वैश्वीकरण के प्रभाव को निम्नलिखित रूप में रेखांकित किया जा सकता है–

1. भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में नीति-निर्माण तथा लोक नीति की अवधारणा का व्यापक महत्त्व है। चूँकि भारत एक लोकतान्त्रिक देश है, इसलिए नीति-निर्माण में विधायिका की भूमिका सर्वोपरि होती है। प्रत्यायोजित विधायन से यह भी स्पष्ट है कि कार्यपालिका की भूमिका भी नीति-निर्माण व लोक नीति के प्रति महत्वपूर्ण होती है। वैश्वीकरण के प्रभाव में यह अवधारणा व्यापक रूप में प्रभावित हुई है। आज विधायिका और कार्यपालिका ऐसे नीतियों को निर्मित एवं क्रियान्वित कर रही है, जो वैश्वीकरण की सहयोगी प्रकृति की हो। वैश्वीकरण से पूर्व लोक नीतियों के निर्माण पर तथा उसके क्रियान्वयन पर सरकार का ध्यान बहुत अधिक होता था, लेकिन आज सरकार अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में एक प्रतियोगी के रूप में खड़ी हो गई है, जिसके लिए वैश्विक प्रभाव में नीतियों का निर्माण आवश्यक हो गया है तथा लोक नीति का महत्व द्वितीयक विषयक बन गया है।
2. भारतीय प्रशासन को 'विकास प्रशासन' की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि यहाँ का प्रशासन विकास सम्बन्धी कार्यों के निष्पादन में व्यापक रूप से सम्बद्ध है। वैश्वीकरण के आगमन से पूर्व भारतीय प्रशासन एक विकास प्रशासन के रूप में भारतीय सन्दर्भ में विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रहा था तथा आज भी विकास प्रशासन के रूप में विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रहा है, परन्तु वर्तमान परिस्थिति, पूर्व की परिस्थितियों से परिवर्तित है। आज भारतीय प्रशासन का स्वरूप भारत में उपस्थित चुनौतियों का सामना तो कर ही रहा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाज और बाज़ार में उपस्थित समस्याओं का भी सामना कर रहा है। भारतीय प्रशासन विकास प्रशाासन के रूप में अपने अस्तित्व को कायम रखना चाहता है, परन्तु इसमें नियामकीय प्रशासन की विशेषताएँ भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। भारत में विकास प्रशासन का स्वरूप समाजवादी अधिक तथा उदारवादी कम था, लेकिन वैश्वीकरण के प्रभाव में इसकी समाजवादी प्रकृति में क्षय हुआ है तथा उदारवादी प्रकृति में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। स्पष्टतः भारत के विकास प्रशासन पर वैश्वीकरण का दोहरा प्रभाव पड़ा है।
3. वैश्वीकरण के प्रभाव में भारतीय लोक प्रशासन के अन्तर्गत तकनीक के प्रयोग

को बढ़ावा मिला है। चूँकि वैश्वीकरण की प्रकृति तकनीकी है, ऐसी स्थिति में भारतीय प्रशासन में तकनीक के प्रयोग का प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। वर्तमान समय में प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में तकनीक का महत्व बढ़ता जा रहा है, यह वैश्वीकृत प्रशासन की माँग भी है।

4. वैश्वीकरण ने भारतीय प्रशासन में प्रशासनिक प्रतिबद्धता को भी प्रभावित किया है। स्वतन्त्र भारत में प्रशासनिक प्रतिबद्धता जनता के प्रति थी, जिसे संविधान द्वारा न्यायिक निर्णय तथा अन्य प्रकार के कानून के द्वारा अभिनिर्धारित किया जाता था। 1991 ई० के बाद भारत में जब नवीन आर्थिक नीतियों को अमल में लाया गया, तब से प्रशासन की प्रतिबद्धता जन हित के साथ-साथ वैश्विक हित से भी सम्बद्ध हो गई है। आज भारतीय लोक सेवा से आशा की जाती है कि वह न केवल जन हित के प्रति उत्तरदायी रहे, बल्कि उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में भारत को सफल देश के रूप में स्थापित करने में भी सहयोग प्रदान किया जाए। भारतीय प्रशासन ने इसी प्रकार की मिश्रित प्रशासनिक प्रतिबद्धता को कायम करना शुरू कर दिया है। स्पष्टतः भारत में प्रशासनिक प्रतिबद्धता का स्वरूप दोहरे रूप में परिवर्तित तथा प्रभावित हुआ है।

5. वस्तुतः भर्ती एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत स्वतः प्रशिक्षण की प्रक्रिया निहित होती है। प्रशासन में प्रशिक्षण के व्यापक महत्त्व को देखते हुए, भर्ती से अलग करके अध्ययन किया जाता है। वैश्वीकरण के प्रभाव में भारतीय शासन के अन्तर्गत भर्ती तथा प्रशिक्षण की प्रक्रिया व्यापक रूप में प्रभावित हुई है। आज तकनीक के प्रभाव में मानवीय संसाधन के महत्व में तुलनात्मक कमी आयी है। भारतीय प्रशासन के अन्तर्गत कम-से-कम भर्ती करने पर जोर दिया जा रहा है तथा पूर्व में भर्ती किए गए लोगों की छंटनी की जा रही है। कार्मिकों की संख्या को कम करने के लिए भारतीय प्रशासन में 'स्वैच्छिक अवकाश योजना' को लागू किया जा रहा है। जहाँ तक प्रशिक्षण का सवाल है, तो वैश्वीकरण में इसकी प्रवृत्ति व्यापक रूप में परिवर्तित हुई है। वर्तमान समय में, भारतीय प्रशासन में प्रशिक्षण प्रदान करना सुविधाजनक हुआ है। इसे भी वैश्वीकरण के तकनीकी प्रभाव के रूप में लिया जा सकता है।

6. वैश्वीकरण के प्रभाव में भारतीय प्रशासन का लोक कल्याणकारी स्वरूप भले ही सिमटता जा रहा हो, लेकिन उसके तकनीति प्रभाव से जन-सहभागिता को बल मिला है तथा प्रशासनिक संचार में वृद्धि हुई है। वस्तुतः प्रशासनिक संचार और जन-सहभागिता को एक-दूसरे का पूरक बनाया जा सकता है, वैश्वीकरण में सूचना व संचार को बढ़ावा मिला है, जिससे जनता और प्रशासन एक-दूसरे

के समीप आयी है। अब प्रशासन के लिए यह सम्भव हो गया है कि वह जन-आवश्यकताओं एवं जन-प्रतिक्रियाओं को आसानी से समझ ले, तो दूसरी ओर जनता के लिए भी प्रशासन से सम्पर्क स्थापित करना तथा उसकी प्रशासनिक कार्य–प्रणालियों से अवगत होना आसान हो गया है। इसे वैश्वीकरण का भारतीय प्रशासन पर एक सकारात्मक प्रभाव माना जा सकता है।

7. भारतीय प्रशासन पर वैश्वीकरण का व्यापक प्रभााव पड़ा है, जिनके कई परिणामों में से एक परिणाम प्रशासनिक संचार व जन सहभागिता का विकास भी है। भारतीय प्रशासन संचार एवं जन सहभागिता जिस रूप में प्रभावी हुई है, उसी रूप में प्रशासनिक संस्कृति भी प्रभावित एवं परिवर्तित हुई है। आज निजी क्षेत्रों के प्रभाव में सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्य संस्कृति का विकास हुआ है। सामान्यतः भारतीय प्रशासन की आलोचना औपनिवेशिक संस्कृति व लालफीताशाही को लेकर की जाती रही है, लेकिन आज यहाँ प्रशासनिक यथास्थितिवादी प्रवृत्तियों में कमी आई है। स्पष्टतः यहाँ यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय प्रशासनिक संस्कृति को सकारात्मक रूप में प्रभावित किया है।

8. वैश्वीकरण की प्रकृति तकनीकी है, इसलिए प्रशासनिक कार्यों के निष्पादन में तकनीक के प्रयोग में वृद्धि हुई है तथा इसका महत्व पूर्व से अधिक बढ़ गया है।[7] सामान्यतः आज प्रशासन में विशेषीकरण को स्वीकार कर लिया गया है, हालाँकि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय प्रशासन में आज भी सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में विवाद नहीं है। सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद प्रशासन में जिस स्तर पर भी कायम हो, विशेषीकरण आज की आवश्यकता है और इसे भारतीय प्रशासन पर वैश्वीकरण के प्रभाव के रूप में लिया जा सकता है।

9. आर्थिक जीवन पर वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। आज समाज में अमीर और गरीब के बीच की खाई, पूर्व से अधिक बढ़ गई है, जिससे मानवीय मूल्यों का क्षय हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में भारतीय प्रशासन के समक्ष विषम सामाजिक-आर्थिक जीवन को लेकर विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित हो गई हैं।[8] आज प्रशासन के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह इस प्रकार के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करे कि वैश्वीकरण से समाज कुप्रभावित नहीं हो तथा मानवीय-मूल्यों का क्षय रूक जाए। भारतीय प्रशासन वैश्वीकरण के सन्दर्भ में आर्थिक नीतियों को निर्धारित और क्रियान्वित कर रहा है।

10. यदि वैश्वीकरण के प्रभाव में भ्रष्टाचार को बल मिला है, तो दूसरी ओर

भ्रष्टाचार के बढ़ते हुए स्वरूप ने प्रशासनिक सुधार को अनिवार्य बना दिया है। भारतीय प्रशासन में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ है, जिनके समाधान के लिए प्रशासनिक सुधार एक व्यापक, सकारात्मक तथा निरोधात्मक प्रक्रिया है। आज यह सर्वमान्य है कि वैश्वीकरण के कुप्रभाव से बचने के लिए प्रशासनिक सुधार को एक निरोधक साधन के रूप में अपनाया जा सकता है।

अतएव इस शोध-पत्र में विश्लेषित तथ्यों से स्पष्ट है कि वैश्वीकरण ने भारतीय प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है एवं भारत में वैश्वीकरण का स्वरूप स्वयं भी भारतीय प्रशासन की संरचना एवं कार्यकरण से प्रभावित हुआ है।

संदर्भ सूची

1. कमलेश गोयल, इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन इन द एज ऑफ ग्लोबलाइज़ेशन, *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ई० एण्ड सी० टेक्नोलॉजी,* भो०–3 (4) : अक्टूबर–दिसम्बर, 2016, पृ०–32.
2. मीनू, इम्पैक्ट ऑफ ग्लोबलाइज़ेशन एण्ड लीबरेलाइज़ेशन ऑन इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एम० एण्ड एम० रिसर्च,* 2(9), 2013.
3. ई० सी० कामार्क, *गवर्नमेंट इनोवेशन एराउण्ड द वर्ल्ड,* जॉन०एफ० कैनेडी स्कूल ऑफ गवर्नमेंट, हार्वर्ड युनिवर्सिटी, 2004, पृ०–34.
4. सी०के० कीम, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन द एज ऑफ ग्लोबलाइज़ेशन, *इंटरनेशनल पब्लिक मैनेजमेंट रिव्यू,* भो०–9, 2004, पृ०–41–42.
5. के० सिंह, व्हाट इज़ रीस्ट्रेनींग द प्रॉसेस ऑफ ग्लोबलाइज़ेशन; *इंडियन मैनेजमेंट स्टडीज़ जर्नल,* 13, 2009, पृ०–71–77.
6. एम० श्रीवास्तव; ग्लोबलाइज़ेशन एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, *एस०एस०आर०एन० डॉट० कॉम०,* 2009.
7. ए० नायक, के० चक्रवर्ती तथा पी० राजीव, ग्लोबलाइज़ेशन प्रॉसेस इन इंडियाः ए हिस्ट्री प्रोस्पेक्टिव सिंस इंडीपेंडेंस, *साउथ एशियन जर्नल ऑफ मैनेजमेंट,* 12, 2006.
8. बाई०भी० रेड्डी, अंडरस्टैंडींग इकॉनॉमिक रिफॉर्मस् फॉर इंडिया, *इंडियन इकॉनॉमिक रिव्यू,* 48, 2006, पृ०–33–38.

कांग्रेस पार्टी की अधोगतिः बिहार के विशेष संदर्भ में (1967&2020)

शशि भूषण कुमार

lkjk'k% भारत की आजादी के उपरांत शासन व्यवस्था के जिस प्रतिमान की आधारशिला रखी गई उस आधारशिला को मजबूत बनाए रखने के कारक शनैः शनैः अप्रासंगिक तो नहीं, लेकिन कमजोर होते चले गए। अपेक्षित एवं समय पर सुधारात्मक उपाय नहीं खोजे जाने के कारण समूची व्यवस्था पतनोन्मुख होती चली गई। साठ-सत्तर के दशक से राजनीतिक संस्थाओं का निरंतर ह्रास या पतन स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगा था, लेकिन इसके कारण सभी विद्वत्जन अलग-अलग कारकों में खोजते हैं। कुछ के अनुसार नेतृत्व की भूमिका इसके लिए उत्तरदायी है तो कुछ के अनुसार सामाजिक संरचना व परंपरा तथा राजनीतिक संस्थाओं में परस्पर अनुकूलता का अभाव इस ह्रास अथवा पतन का कारण हैं, जबकि कुछ के अनुसार भारत की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ व समस्याएँ इन संस्थाओं के सफल व्यवहार या कार्यान्वयन के मार्ग में बाधा बनीं। परंतु सभी विद्वत्जनों का निष्कर्ष है कि राजनीतिक संस्थाओं की कार्यकुशलता, क्षमता और भूमिका में निरंतर गिरावट आई है। राजनीतिक दल राजनीतिक संस्थाओं के महत्वपूर्ण घटक हैं जिसके ऊपर लोकतांत्रिक व्यवस्था के सफल संचालन की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। दुर्भाग्यवश, आज राजनीतिक दल भी अधोगामी स्थिति के शिकार हैं। परिवारवाद, वंशवाद पर आधारित दलीय प्रणाली ने राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ खड़ी कर दी है। प्रस्तुत आलेख में भारत के सबसे प्राचीन दल, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पतनशीलता का विश्लेषण बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

प्रायः यह माना जाता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अंग्रेजों से तीन मजबूत संस्थाएँ औपनिवेशिक विरासत में भारत को मिलीं–कांग्रेस, नौकरशाही और सेना–जिनसे

भारत की राजनीतिक स्थिरता को आधार प्राप्त हुआ। जवाहरलाल नेहरू के समय इन संस्थाओं का कार्यान्वयन भी तनावरहित वातावरण में हुआ और अनेक नई संस्थाओं के विकास से भारत की विविधतायुक्त बहुलता तथा विशालता को एक नीति-निर्माण व निर्णयकारी संघात्मक ढाँचे के अंतर्गत जोड़ने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार एक मिश्रित संस्थात्मक ढाँचा का विकास हुआ। कांग्रेस और नेहरू दोनों इस मिश्रित मॉडल के प्रतीक भी थे और परिणाम भी। अनेक विचारक नेहरू को भी पाश्चात्य संस्थात्मक विरासत का अभिन्न अंग व सबसे उत्कृष्ट नमूना मानते हैं। जब तक ये दोनों संस्थाएँ मजबूत रहीं अन्य संस्थाएँ प्रत्याशित शैली में काम करती रहीं, परंतु उनकी जड़ें मजबूत नहीं हो सकीं[1], परिणामस्वरूप संसदीय व्यवस्था के लगभग 15 वर्षों में भी न तो कांग्रेस सच्चे अर्थों में प्रतिनिधि संस्था बन सकी और न ही उसके विकल्प का विकास हो सका। अतः नेहरू की शक्ति क्षीण होने के साथ-साथ कांग्रेस का संस्थात्मक आधार भी हिलने लगा और भारत की संघीय व्यवस्था का संतुलन भी। परिणामस्वरूप 'नेहरू के बाद कौन?' का प्रश्न एक कसौटी के रूप में बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों और विश्लेषकों– सभी को चिंतित करता रहा। यह संस्था-निर्माण अथवा संस्थाओं को आत्मसात करने में हमारी दुर्बलता का ही परिचायक था।

नेहरू के बाद लाल बहादुर शास्त्री और उनके पश्चात इंदिरा गांधी के चयन ने उत्तराधिकार अथवा सत्ता परिवर्तन की समस्या का कुछ हद तक निराकरण तो कर दिया किन्तु कांग्रेस की अंदरूनी कलह, गुटबंदी और अंतर्विरोधों ने उसकी सांगठनिक दुर्बलता को और भी स्पष्ट कर दिया। फलस्वरूप भारत की एक आधारभूत उदार संसदीय संस्था का पतन प्रारंभ हो गया।[2] यही ह्रास विभाजित विपक्ष, प्रांतीय या क्षेत्रीय दलों के उदय और विस्तार, क्षेत्रीय असंतुलनों और आंदोलनों, अस्थायी प्रांतीय सरकारों, दल-बदल की निरंतर पुनरावृत्ति, नौकरशाही की निष्पक्षता में कमी, बढ़ती हुई आर्थिक समस्या एँव बढ़ते हुए जन-असंतोष व आक्रोश इत्यादि में प्रतिफलित हुआ।

इस युग में भारत की दो मौलिक निर्णय निर्माणकारी प्रक्रियाओं ''मतैक्य पर आधारित निर्णय-निर्माण'' और ''सहमति या सामंजस्य के सिद्धांत'' का भी लोप होने लगा जो एक प्रतियोगी दलीय व्यवस्था के अभाव में बहुलवादी व सामाजिक तौर पर विखंडित भारतीय समाज को उदारवादी लोकतांत्रिक बनाए रखने में सक्षम रहीं थीं।[3] उसके स्थान पर संघर्ष और भीड़–रंजन की राजनीति का उदय हुआ जो अंत में राजनीतिक उदारवाद व लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अल्पकालीन स्थगन (1975–77) का कारण बनी।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्थाओं के एक अंग के रूप में राजनीतिक दल महत्वपूर्ण संरचना है। नागरिकों के संगठित होने अथवा संघ निर्माण के मौलिक अधिकारों के प्राप्त होने के चलते राजनीतिक दल लोकतंत्र का पर्यायवाची हो जाता है। यह एक राजनीतिक यथार्थ है कि बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में वैश्विक स्तर पर लोकतंत्र की जो संस्थाएँ सर्वाधिक अपयश और जनता की असंतुष्टि एवं निंदा के

पात्र बने, उनमें राजनीतिक दल प्रमुख थे।[4] हालॉकि यह एक विश्वव्यापी लोक प्रवृत्ति रही क्योंकि कमोवेश दुनिया के सभी देशों में सरकारों के प्रति जन–विश्वास में ह्रास हुआ है। जापान, उत्तर अमेरिका और यूरोप– सभी देशों की सरकारों के प्रति छिद्रान्वेषण तथा राजनीतिज्ञों के प्रति आस्था शून्य की भावना दृष्टिगोचर होने लगी। भारत में 1967 के बाद राजनीतिक दल/दलों में ह्रास ज्यादा उभर कर सामने आया जिसके परिणाम 1967 से 1989 तक राज्यों में अस्थिर सरकारों अथवा गठबंधन सरकारों के निर्माण से जुड़ी जोड़-तोड़ राजनीति, विधान सभा में *''आया राम गया राम''* राजनीति, चुनावी संघर्ष में अवैध एवं अनैतिक साधनों के प्रयोग में दृष्टिगोचर हुआ।

1947 से ही नेता वादे करते रहे, आश्वासन देते रहे और राजनीतिक दल नारे लगाते रहे फिर भी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की दर अत्यंत धीमी रही। आम भारतीय जनमानस में यह धारणा बन गई कि राजनीतिक दलों के नेता सुविधाभोगी और शोषण करने वाले हैं। इनके नारे आडंबर से भरे लोक-लुभावने हैं तथा इनकी कथनी एवं करनी में अंतर है, जिसके फलस्वरूप वे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के वाहक नहीं हो सके। राजनीतिक दलों के भीतर आंतरिक जनतंत्र का अभाव भी इसका एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी ओर विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट ध्यान आकृष्ट करती हैः

> राजनीतिक दल ही सरकार बनाते हैं, संसद का गठन करते हैं और देश की सरकार चलाते हैं। राजनैतिक दलों की कार्यप्रणाली ने लोकतांत्रिक सिद्धांतों का सम्मान न करने वाले राजनैतिक दल से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह देश का शासन चलाने में उन सिद्धांतों का सम्मान करेगी जो कि संभव भी नहीं। ऐसा नहीं हो सकता कि इसकी भीतरी कार्यप्रणाली में तो तानाशाही हो और बाहर यह लोकतांत्रिक तरीके से काम करें।[5]

जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं, राजनीतिक दलों में गिरावट एक विश्वव्यापी प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगोचर हुई है और भारत में यह प्रवृत्ति 1967 के बाद ज्यादा दृष्टिगोचर हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सहित सभी दल अधोगामी स्थिति के शिकार हैं। चूँकि विवेचना का केन्द्रबिन्दु कांग्रेस पार्टी के क्षरण से संबद्ध है और वह भी भारत के एक राज्य विशेष– बिहार में, इसलिए अन्य दलों की पतनशीलता के कारकों की चर्चा करना यहाँ समीचीन नहीं है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु अनेक संगठन कार्यशील थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उन सभी संगठनों में सर्वोपरि थी। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारत में सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार और जनजागरूकता के लिए आंदोलन प्रारंभ हो गए। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने भारत में राजनीतिक दलों के इतिहास की शुरूआत कर दी। हालॉकि प्रारंभ में उसे भारतीय जनता तथा अंग्रेज प्रशासन के बीच

एक कड़ी के रूप में स्थापित किया गया था किंतु धीरे-धीरे कांग्रेस पार्टी संपूर्ण भारत के प्रतिनिधि के रूप में विकसित हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में दलीय व्यवस्था एक आंदोलन के रूप में थी। कांग्रेस सहित अन्य छोटे–छोटे दलों ने राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया और राष्ट्रीय मांगों को प्राथमिकता दी और इस प्रकार कांग्रेस की पहचान एक आंदोलनकारी पार्टी के रूप में स्थापित हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत अंग्रेजी हुकूमत ने कांग्रेस पार्टी की सर्वस्वीकार्य छवि के कारण शासन-सत्ता की बागडोर कांग्रेस पार्टी को सौंप दिया क्योंकि 1946 में अंतरिम सरकार के गठन में कांग्रेस पार्टी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1946 से लेकर अब तक कांग्रेस पार्टी के विभिन्न चरणों की एक संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है:

प्रथम चरण– कांग्रेस 'एक दलीय प्रभुत्व' के रूप में (1946–1967)

द्वितीय चरण– राज्य स्तर पर कांग्रेस का पतन एवं गठबंधन सरकार का काल (1967–1977)

तृतीय चरण– इंदिरा काल में 'गरीबी हटाओं' के नारे के साथ कांग्रेस पार्टी का पुनरूत्थान (1971–1977)

चतुर्थ चरण– केन्द्रीय स्तर पर कांग्रेस पार्टी का पतन एवं जनता पार्टी का उदय (1977–1980)

पंचम चरण– इंदिरा एवं राजीव शासनकाल के तहत कांग्रेस का पुनरूत्थान (1980–1989)

षष्ठ चरण– केन्द्रीय स्तर पर नई बहुदलीय व्यवस्था का विकास एवं कांग्रेस का पतन (1989–1998)

सप्तम चरण– द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था (कांग्रेसनीत् यूपीए एवं भाजपानीत् एनडीए) की ओर (1998–2014)

अष्टम चरण– कांग्रेसनीत् यूपीए का पतन (2014–वर्तमान तक)

स्वतंत्रता से पूर्व हुए राष्ट्रवादी आंदोलनों में कांग्रेस पार्टी ने केन्द्रीय भूमिका निभाई तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्वयं को राजनीतिक दल के रूप में रूपांतरित किया। इसी आंदोलनकारी छवि ने कांग्रेस को भारत में सबसे लोकप्रिय तथा एकमात्र प्रभुत्व वाला दल बना दिया। यद्यपि कई विरोधी दलों का भी निर्माण हुआ, तथापि कांग्रेस ने अपनी विशिष्ट पृष्ठभूमि के कारण एक बड़े जनसमूह के समर्थन एवं विश्वास को बनाए रखते हुए सबसे प्रमुख दल बनने में सफलता प्राप्त की।[6]

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय जनता ने कांग्रेस को हाथों-हाथ लिया। 1951–52 के प्रथम आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को 22 में से 18 प्रांतों में पूर्ण बहुमत मिला तथा लगभग सभी राज्यों में सबसे बड़ा राजनीतिक दल होने के कारण कांग्रेस

की सरकार बनीं। कमोबेश यही स्थिति 1957 तथा 1962 के चुनावों में भी बनी रही। लोगों में कांग्रेस के प्रति इस रूझान के कई कारण थे। *प्रथम,* कांग्रेस की रणनीति, जैसे *'पार्टी ऑफ कंसेंसस'* (Party of consensus)[7] तथा *'कैच ऑल स्ट्रेटजीज़'* (catch all strategies); *दूसरा,* कांग्रेस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा स्वतंत्रता संग्राम में उसकी अग्रणी भूमिका; *तीसरा,* कांग्रेस की संगठनात्मक संरचना तथा लचीलापन; *चौथा,* उसका करिश्माई नेतृत्व; तथा *पांचवां,* असंगठित विपक्ष। कांग्रेस ने प्रारंभ से ही सभी को साथ लेकर चलने की नीति अपनाई थी। यही कारण है कि भारत के हर प्रांत में कांग्रेस ने अपनी पहुँच बनाई। इसके अंतर्गत कई विरोधी जातियों, संप्रदायों, नेतृत्व (राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, ग्रामीण, नगरीय), मुख्यमंत्री पक्ष एवं विक्षुब्ध नेताओं के गुटों (फैक्शन्स) का समागम था किन्तु कांग्रेस पार्टी इन अनौपचारिक विरोधों को आत्मसात कर इसमें सहमति पैदा कर इस दल को सुदृढ़ता और स्थायित्व प्रदान करती थी। इस प्रकार कांग्रेस एक ऐसी छतरी (umbrella) के समान थी जिसके नीचे सभी समा सकते थे। कांग्रेस का यह चरित्र 1967 के चतुर्थ आम चुनाव के पहले तक बरकरार रहा। इसलिए 1967 तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप डब्ल्यू. एच. मोरिस–जोन्स[8] ने 'एक दलीय प्रभुत्व व्यवस्था' के रूप में तथा रजनी कोठारी[9] ने इसे 'कांग्रेस सिस्टम' के रूप में दिखाया है। हालाँकि कांग्रेस की प्रभावशीलता का जो स्तर राष्ट्रीय दलीय व्यवस्था में दर्ज था, वह प्रांतों में नहीं था। फिर भी, 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के पूर्व तक कांग्रेस जम्मू और कश्मीर एवं केरल को छोड़कर सभी राज्यों में सरकार बनाने में सफल रही थी।

1967 के राज्य विधान सभाओं के चुनाव में पहली बार 'एक दलीय प्रभुत्व व्यवस्था' अथवा 'कांग्रेस सिस्टम' को धक्का पहुँचा। केन्द्रीय स्तर पर कांग्रेस पार्टी सरकार बनाने में तो सफल रही किन्तु 16 राज्यों में हुए विधान सभा चुनावों में बिहार सहित आठ राज्यों में कांग्रेस पार्टी को पराजय का मुंह देखना पड़ा। कई राज्यों में क्षेत्रीय दल सशक्त होकर उभरे। 20 वर्षों तक कांग्रेस बिना प्रतिरोध के केन्द्र तथा प्रांतों के स्तर पर लगातार बहुमत प्राप्त करती रही। 1967 से पहले इसे मात्र दो बार सरकार बनाने के लिए गठबंधन करना पड़ा तथा मात्र पांच बार राज्यों में मध्यावधि चुनाव कराने पड़े, जिसमें से तीन बार केरल में ही हुए। 1967 में आठ राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकार की स्थापना ने एक नए युग का सूत्रपात किया तथा कांग्रेस की पतनशीलता का विश्लेषण शुरू हो गया। इस संदर्भ में एम. पी. सिंह एवं रेखा सक्सेना का कथन है कि ''स्वतंत्रता के काल से आरंभ करते हुए देखा जाय तो भारतीय राजनीति में निरंतरता से कहीं ज्यादा गमन के लक्षण परिलक्षित होते हैं''।[10] इनके अनुसार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारंभिक वर्चस्व का 'क्रमिक क्षरण' कई विधियों द्वारा कई दिशाओं में हुआ। इस क्रमिक क्षरण या गिरावट की चर्चा तीन स्तरों पर की जा सकती हैः

प्रथम गिरावट आंतरिक थी जो कांग्रेस के नेताओं के परस्पर मतभेदों के कारण

उत्पन्न हुई। इसकी परिणति 1969 में कांग्रेस में विभाजन-कांग्रेस (इंदिरा) एवं कांग्रेस (संगठन) के रूप में हुई।

द्वितीय गिरावट, समाज के जातिगत, धार्मिक एवं जनजातीय पदसोपानों को नीचे की ओर से चलायमान करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। गैरकांग्रेसी राजनीतिक दलों ने जातिगत, धार्मिक एवं जनजातीय पहचानों का लामबंदीकरण (mobilisation) किया जिससे कांग्रेस को समर्थन देने वाले वृहत् सामाजिक आधार में कटौती हुई।

तृतीय गिरावट 'क्षेत्रीयता' तथा 'प्रादेशिकता' की बढ़ती भूमिका के कारण आई। प्रादेशिक पहचानों, असमताओं एवं विविधताओं की अभिव्यक्ति के कारण कांग्रेस के मेल–मिलाप की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा कांग्रेस का अखिल भारतीय चरित्र कमजोर हो गया। कांग्रेस में आई क्रमिक गिरावट से उत्पन्न रिक्त स्थान को अन्य अखिल भारतीय दल प्रभावशाली तरीके से भरने में असफल होते गए जिससे राज्यों में क्षेत्रीय दलों का उत्थान होता गया।

इसी संदर्भ में योगेन्द्र यादव के विचार भी उल्लेखनीय हैं। अपने लेख *''यूनाइटेड कलर्स ऑफ कांग्रेस''* में उन्होंने तर्क दिया कि पारंपरिक रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इंद्रधनुषी मेल का प्रतीक था।[11] अर्थात् कांग्रेस विभिन्न सामाजिक ओहदों के मतदाताओं की प्रतिनिधि थी। लेकिन जातीय उत्तेजना में अभिवृद्धि तथा पिछड़ी हुई जातियों के कांग्रेस के प्रति विश्वास में ह्रास के फलस्वरूप जाति पर आधारित दल कांग्रेस के इंद्रधनुष के विभिन्न रंगों के टुकड़ों पर कब्जा करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस *'कैच ऑल'* से *'कैच नन'* दल में परिणत हो गई। अर्थात् कांग्रेस उन बचे–खुचे मतदाताओं का समर्थन प्राप्त कर रही है जिन्हें अन्य विरोधी दल सामाजिक दरारों को सक्रिय करने के बावजूद अपने पक्ष में चलायमान नहीं कर पाए। योगेन्द्र यादव के अनुसार इसका प्रमुख कारण यह है कि कांग्रेस के पास किसी समूह विशेष को रिझाने के लिए उपयुक्त विचारधारा का अभाव है। कांग्रेस में क्रमिक क्षरण के लिए निम्न कारक उत्तरदायी रहे।

स्थानीय स्वशासन के महत्व को नकारना

आजादी के बाद नेहरू युग के दौरान और विशेष रूप से मेहालनोविस की सलाह के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय योजना एवं राष्ट्रीय विकास पर बल दिया। लेकिन भारतीय नेतृत्व ने स्वतंत्रता पूर्व अर्जित राष्ट्र निर्माण के महत्वपूर्ण पक्ष को भुला बैठा जिससे प्राथमिक राजनीतिक अनुभव हासिल कर वो देश के शासन की बागडोर थामने आये थे। राष्ट्रीय स्तर पर एवं राज्यों के स्तर पर कांग्रेस के पास ऐसे समर्पित नेता थे जिनके पास उच्च पदों पर पहुँचने से पूर्व म्युनिसिपलिटी के शासन व राजनीति का अच्छा खासा प्राथमिक अनुभव था। लाला लाजपत राय, जवाहर लाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल, सुभाष चन्द्र बोस, गोविन्द बल्लभ पंत, श्री कृष्ण सिंह, अनुग्रह

नारायण सिंह इत्यादि नेताओं के पास म्युनिसिपल शासन एवं राजनीति का अच्छा खासा अनुभव था। आजादी के बाद इस व्यवहार का चलन बंद हो गया। संविधान लागू होने के लगभग 42 वर्षों के बाद 1992 में 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन के द्वारा इसके महत्व को संवैधानिक रूप से स्वीकार किया गया। बाद के कांग्रेसी नेता स्थानीय शासन के प्राथमिक राजनीतिक अनुभव से अछूते रहे जो कांग्रेस के क्षरण का कारण बना।

नेहरू के बाद नेतृत्व संकट

प्रारंभिक तीन आम चुनावों में कांग्रेस को नेहरू का प्रभावशाली नेतृत्व प्राप्त था। नेहरू कांग्रेस के लिए एक प्रभावशाली मत संग्राहक (vote mobilizer) थे। ऐसा नेतृत्व अन्य दलों को प्राप्त नहीं था। लेकिन 1962 में भारत–चीन युद्ध में भारत की पराजय ने नेहरू की छवि को धूमिल कर दिया तथा 1964 में उनके देहावसान के बाद कांग्रेस में नेतृत्व संकट की भरपाई नहीं हो सकी। नेहरू के बाद राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस किसी ऐसे नेतृत्व को हासिल नहीं कर सका जो नेहरू की तरह प्रभावशाली एवं पार्टी को अनुशासित रख पाता। फलतः कांग्रेस पतनोन्मुख होता चला गया।

स्वामी पूजा की प्रवृत्ति

कांग्रेस को मिल रही लगातार सफलता ने कांग्रेस के प्रारंभिक स्तर के नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को इस बात का विश्वास दिला दिया कि जिसे भी कांग्रेस की ओर से प्रत्याशी बना दिया जायेगा, उसका चुना जाना लगभग तय है। इससे कांग्रेस में स्वामी पूजा की प्रवृत्ति घर कर गई। नेताओं ने जनता के लिए काम करना छोड़ प्रभावशाली नेताओं की जी–हुजूरी शुरू कर दिया जबकि अन्य क्षेत्रीय दल जनता के बीच रहकर कार्य कर रहे थे।

विपक्ष का विखंडित स्वरूप

प्रथम तीन आम चुनावों में कांग्रेस की सफलता के पीछे विपक्ष का विखंडित स्वरूप भी एक बड़ा कारण था। लेकिन 1967 के आम चुनावों में विपक्ष ने राम मनोहर लोहिया की प्रसिद्ध रणनीति के तहत आपसी टकराव से बचने के लिए यूनाईटेड फ्रंट (United Front) की नीति अपना ली। इससे विपक्ष की संगठित स्थिति पहली बार दृष्टिगोचर हुई जिसने कांग्रेस के अभेद्य किले में सेंधमारी शुरू कर दी।

क्षेत्रीय नेतृत्व का कमजोर होना

ऐसा माना जा रहा था कि नेहरू के बाद केन्द्रीय नेतृत्व कमजोर होकर विभिन्न राज्यों की कांग्रेस इकाई के बीच संचालक की भूमिका तक सीमित रह जाएगा जबकि क्षेत्रीय नेतृत्व मजबूत होकर सामने आएगा। परंतु नेहरू के बाद शास्त्री, के. कामराज,

एस. के. पाटिल, अतुल्य घोष तथा नीलम संजीव रेड्डी ने राष्ट्रीय स्तर पर 'कॉकस' (caucus)[12] का निर्माण कर लिया था। इसके बाद क्षेत्रीय नेतृत्व पहले से भी अधिक कमजोर हो गया। इंदिरा गांधी का कांग्रेस पर नियंत्रण रखने के प्रयास ने कांग्रेस के अंदर एक संग्राम को जन्म दे दिया था। इन अंतरदलीय संघर्षों (intra-partyconflicts) के बीच कांग्रेस अपना पुराना विश्वास खोती चली गई एवं गिरावट की ओर अग्रसर हो गई।

कांग्रेस की अंदरूनी कलह एवं इंदिरा गाँधी की कार्यशैली

कांग्रेस के संग्राम ने लोगों को अन्य दलों के विषय में सोचने पर मजबूर कर दिया। यहाँ तक कि पूँजीपतियों ने भी अपनी रणनीति बदल दी। अधिकांश पूँजीपतियों ने अन्य दलों को आर्थिक मदद देना प्रारंभ कर दिया जिससे विपक्षी दलों की क्षमता में विस्तार हुआ और वे चतुर्थ आम चुनावों में कांग्रेस को चुनौती देने में सफल रहे। कांग्रेस में क्षरण का एक महत्वपूर्ण कारण इंदिरा की कार्यशैली भी रही। इंदिरा के नेतृत्व में कांग्रेस अपने संघीय स्वरूप को खोती जा रही थी तथा अब यह संस्थाकृत कम; केन्द्रीकृत तथा व्यक्तिनिष्ठ अधिक होती जा रही थी। कांग्रेस की छतरी अब कांग्रेस के हाथ में नहीं रही। मुख्य रूप से पिछड़े एवं शोषित वर्गों को ऐसा लगा कि कांग्रेस को अब उनकी चिंता नहीं रही। इन्हीं परिस्थितियों में समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी का उदय हुआ। इसके अलावा स्वतंत्र पार्टी, जनसंघ (जो अब भारतीय जनता पार्टी है) ने तथा फिर जनता दल व उनसे टूटे अन्य दल, कांग्रेस से टूटे दल, वामपंथी दल तथा अन्य क्षेत्रीय दलों ने अपना आधार मजबूत कर लिया।

कांग्रेस में विभाजन

1969 में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस के तुलनात्मक रूप से अधिक वैयक्तिक एवं केन्द्रीकृत तथा गैर–संस्थानात्मक एवं असहनशील स्वरूप ग्रहण करने से दक्षिणपंथी क्षेत्रीय नेता (syndicates) असंतुष्ट हो गए। फलतः कांग्रेस के अंदर इंदिरा समर्थक 'सरकार में कांग्रेस' एवं 'कांग्रेस–सिंडिकेट' के बीच संघर्ष प्रारंभ हो गया जो कांग्रेस के विभाजन में परिणत हुआ। इस विभाजन ने कांग्रेस को दो भागों– कांग्रेस (इंदिरा) Congress (I) एवं कांग्रेस (संगठित) Congress (0) में बांट दिया।[13] इस घटना को एम. पी. सिंह 'महान कांग्रेस विभाजन' (great congress split) की संज्ञा देते हैं।[14] इससे राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस की साख कमजोर हुई तथा इसकी पतनशीलता की रफ्तार तेज हो गई।

इंदिरा की आपात्काल की नीति

इंदिरा की आपातकाल (1975-77) की नीति ने भी कांग्रेस को पतनशील बनाने में अपना योगदान दिया। 1974 के जेपी आंदोलन तथा विपक्ष की बढ़ती ताकत को

रोकने के लिए इंदिरा ने पूरे देश को 21 महीनों तक आपात्काल की पीड़ा झेलने को विवश कर दिया जिसकी परिणति 1977 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय एवं जनता पार्टी के रूप में संगठित विपक्ष के उदय के रूप में हुआ। मूल्य वृद्धि, बेकारी तथा भ्रष्टाचार के नारों ने भारत के ग्रामीण और युवा वर्गों को कांग्रेस की गांधी टोपी के इतना विरूद्ध कर दिया कि स्वतंत्रता के 20 वर्षों के बाद ही कांग्रेस का गांधी टोपी पहनकर गांव पहुँचना मुश्किल हो गया।

राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस की पतनशीलता के जो भी कारक जिम्मेवार थे, कमोवेश वे सभी कारक राज्यों के स्तर पर विशेष रूप से उत्तर भारतीय राज्यों के लिए भी जिम्मेवार रहे। कांग्रेस की 'हृदय स्थली' (Heart land) के रूप में प्रसिद्ध राज्यों–हरियाणा, उत्तर प्रदेश, केन्द्र शासित क्षेत्र दिल्ली एवं बिहार में 1977 के आम चुनाव में कांग्रेस को एक भी सीट हासिल नहीं हुई जबकि राजस्थान व मध्य प्रदेश में मात्र एक सीट पर जीत दर्ज करने में सफल रही।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बिहार की पहचान एक ऐसे सूबे के रूप में थी जिसने अनेक मौकों पर कांग्रेस के राष्ट्रीय स्तर के नेताओं का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। भारत में गांधी के सत्याग्रह का पहला प्रयोग बिहार के चंपारण में हुआ था। श्री कृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, राजेन्द्र प्रसाद इत्यादि बिहार के स्तर पर ऐसे समर्पित कांग्रेसी कार्यकर्ता थे जिन्होंने कांग्रेस की नीतियों को ईमानदारी से प्रचारित–प्रसारित किया। इसी के प्रतिफलस्वरूप बिहार में 1946 में श्री कृष्ण सिंह के नेतृत्व में कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ जो राज्य के शासन एवं प्रशासन को विकास के मार्ग पर अग्रसर करते रहे। जिस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर सुशासन एवं विकास के लिए नेहरू–पटेल को याद किया जाता है, ठीक उसी प्रकार बिहार के स्तर पर श्री कृष्ण सिंह–अनुग्रह नारायण सिंह को सुशासन एवं विकास के लिए श्री कृष्ण सिंह की मृत्यु (1961) तक जाना जाता है। 1946–63 की अवधि में बिहार का चहुँमुखी विकास हुआ। किसी भी मायने में व्यावहारिक तौर पर राष्ट्रीय नेतृत्व एवं राज्यों के नेतृत्व में कोई वरीष्ठता एवं अधीनस्थता की स्थिति नहीं थी। नेहरू 1947 से लेकर दिसंबर 1963 तक प्रत्येक महीने की पहली और 15वीं तारीख को राज्यों के मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखते रहे। उसमें वे अपनी सरकार की नीतियों को विस्तार से बताते–समझाते थे एवं मुख्यमंत्रियों से सुझाव–सलाह भी लेते थे।[15] 1950 के दशक में बिहार को 'अच्छे से शासित' राज्य कहलाए जाने का भी गौरव प्राप्त था।[16] कांग्रेस व्यवस्था के अंतर्गत बिहार में कांग्रेस को 1946–63 काल–खण्ड तक सभी जातियों एवं वर्गों का समर्थन मिलता रहा। कुल मिलाकर इस काल में कानून एवं व्यवस्था, औद्योगीकरण, कृषि में विकास, नए संस्थाओं का विकास इत्यादि के कारण बिहार 1961 तक श्री कृष्ण सिंह के नेतृत्व में एवं 1961–63 तक बिनोदा नन्द झा के नेतृत्व में शांतिपूर्वक शासित होता रहा।

एकल पार्टी के रूप में कांग्रेस को बिहार में सत्ता से दूर हुए लगभग तीस वर्ष हो

चुके हैं। अबतक 23 मुख्यमंत्रियों में से 20 मुख्यमंत्रियों को देने वाली कांग्रेस आज कल्पनाशीलता एवं नवाचार से परे बिल्कुल हाशिए पर है। बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के पूर्व अध्यक्ष अशोक चौधरी स्वीकार करते हैं कि पिछड़ों एवं मंडल के साथ विलगाव तथा लगातार अगड़ी जातियों के पक्ष में वकालत ने पार्टी को हाशिए पर ले आया।[17] 1967 के बाद पिछड़ी एवं अति पिछड़ी जातियों के बढ़ते महत्व का कांग्रेस द्वारा अनदेखी की गई। 1967–72 के बीच नौ मुख्यमंत्रियों में से सात अगड़ी जातियों से नहीं थे। 1977 में मध्यम जातियों ने सत्ता पर कब्जा जमाया जिसे 1990 में लालू प्रसाद यादव अपने पक्ष में कर सत्तासीन हुए। स्थिति की गंभीरता को समझने में नाकाम कांग्रेस 1990 तक अपने सभी समर्थित जातीय आधार को खो बैठी जिसकी परिणति बिहार में कांग्रेस का सफाया के रूप में हुई।

के. बी. सहाय के मुख्यमंत्रित्व काल (1963–67) में बिहार में कांग्रेस सरकार के विरूद्ध विरोध के स्वर तेज होने लगे। के. बी. सहाय सरकार के विरूद्ध कुविकास, मूल्य वृद्धि, बेरोजगारी एवं भष्टाचार के आरोपों की खुले आम चर्चा होने लगी।

भ्रष्टाचार बिहार की राजनीति में पूर्व आजादी काल में ही शुरू हो गया था। बिहार कांग्रेस के दिग्गज श्री कृष्ण सिंह के ऊपर बेतिया (साठी) जमीन के गलत तरीके से बंदोबस्ती तथा महेश प्रसाद सिंह के संबंधी राम प्रसाद नारायण शाही, तत्कालीन आबकारी आयुक्त को फायदा पहुँचाने के लिए छोआ बिक्री के गलत आदेश पारित करने के आरोप लगे।[18] महात्मा गांधी एवं सरदार पटेल ने श्री कृष्ण सिंह के ऊपर लगे आरोपों की सार्वजनिक रूप से निंदा की थी। आजादी के बाद अनेक कांग्रेसी मंत्रियों एवं मुख्यमंत्रियों के ऊपर भ्रष्टाचार के आरोप लगे। तत्कालीन कांग्रेसी मुख्यमंत्री के. बी. सहाय एवं पांच अन्य मंत्रियों–महेश प्रसाद सिंह, सत्येन्द्र नारायण सिंह, राघवेन्द्र नारायण सिंह, राम लखन सिंह यादव एवं अंबिका शरण सिंह–के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए अय्यर आयोग की नियुक्ति 1968 में की गई थी। 1970 में सौंपे अपनी रिपोर्ट में आयोग ने उपरोक्त के ऊपर लगाए गए पक्षवाद एवं जातिवाद के आरोपों को सही पाया।[19] आजादी के उपरांत बिहार में कांग्रेसी मुंख्यमंत्रियों एवं मंत्रियों का इस तरह भ्रष्टाचार में लिप्त रहना और इस पर पर्दा डाले रहना आम जनमानस में कांग्रेस की स्वच्छ छवि, विकास का पर्याय एवं कांग्रेस के प्रति निष्ठा की भावना को धोकर रख दिया। इस प्रकार धीरे–धीरे कांग्रेस पार्टी बिहार में भी पतनोन्मुख होती चली गई।

1946 से 1967 तक बिहार में एकल पार्टी वर्चस्व वाली व्यवस्था के अंतर्गत राजनीतिक स्थिरता का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि इस काल में एक संकीर्ण अभिजनवादी राजनीतिक व्यवस्था कायम थी जो मुख्य रूप से उच्च जातियों के नेतृत्व एवं कुछ सहयोजित वर्गों–पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा मुस्लिम नेतृत्व से संघटित थी। उपरोक्त व्यवस्था में अन्य पिछड़ी जातियों की

सामाजिक और राजनीतिक गतिशीलता की कमी थी। 1967 में राम मनोहर लोहिया के 'पिछड़ी जातियों की राजनीतिक एकजुटता' के सिद्धांत ने अन्य पिछड़ी जातियों को सत्ता हासिल करने हेतु एकजुटता के लिए उद्धेलित किया। लोहिया ने विचार दिया कि केवल गठबंधन सरकार ही कांग्रेस पार्टी के आधिपत्य (ब्राह्मणवादी–उच्च जाति) को समाप्त कर सकता है। भारत में जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने वाला प्रथम राज्य बिहार जमींदारी उन्मूलन के बाद भी अपने अर्द्धसामंती चरित्र को खत्म न कर सका। भूमि सुधार से संबंधित भू–हदबंदी कानून, बटाईदारी कानून एवं अन्य संबंधित कानूनों को ठीक तरीके से लागू नहीं किया गया। इससे अन्य पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में कांग्रेस के प्रति निष्ठा में कमी आई और धीरे–धीरे ये सभी कांग्रेस से विमुख हो सत्ता संघर्ष करने लगे। आजादी के लिए आंदोलन के दौरान बिहार में कांग्रेसी नेताओं के बीच जिस त्याग एवं बलिदान की भावना का विकास हुआ, बाद के कांग्रेसी नेताओं ने इसको बरकरार नहीं रखा। फलतः राज्य बेकारी, गरीबी, कुशासन, अशिक्षा, कृषि की उपेक्षा, भ्रष्टाचार इत्यादि की ओर अग्रसर हो गया एवं बिहार में कांग्रेस के क्षरण का कारण बना।

1967 में हुए विधान सभा के चुनाव ने बिहार में गठबंधन शासन एवं राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण को जन्म दिया। महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में पहली गठबंधन सरकार 5 मार्च 1967 को गठित हुई। यह संयुक्त विधायक दल की सरकार थी जिसमें कांग्रेस को छोड़कर लगभग सभी दल शामिल थे। मुख्यमंत्री के रूप में इन्होंने विद्यार्थियों को 'जिगर के टुकड़े' से संबोधित किया एवं परीक्षा में 'चीट' इस्तेमाल करने की आजादी दे दी। उप मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर ने भी मैट्रिक परीक्षा बिना अंग्रेजी पास करने का आदेश जारी कर दिया। राज्य पूरी तरह कुव्यवस्था की ओर अग्रसर हो गया जिसके लिए स्वयं पूर्व कांग्रेसी सरकार की नीतियां जिम्मेवार थी। 1967–72 के बीच बिहार में छः गठबंधन सरकारों का निर्माण हुआ; इसके बाद तीन बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया; तथा तेरह बार सरकार में परिवर्तन हुआ। कोई भी सरकार 300 दिनों से ज्यादा नहीं चल सकी और सबसे कम दिनों तक चलने वाली सरकार मात्र चार दिनों तक चली। अस्थिरता का वातावरण 1972 के विधान सभा चुनाव में कांग्रेस की वापसी के साथ खत्म हुआ।[20]

1967–72 के काल में बिहार में कांग्रेस पार्टी की भूमिका मुख्य रूप से गैरकांग्रेसी दलों को सत्ता से दूर रखना, गैरकांग्रेसी सरकारों को अस्थिर करना, कांग्रेस के अंदर पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समूह के नेताओं को सत्ता सौंपना ताकि इन वर्गों के नेताओं को ऐसा लग सके कि कांग्रेस पार्टी ही इनकी हितैषी है, की रही। महामाया प्रसाद सिन्हा के बाद बी. पी. मंडल, भोला पासवान शास्त्री, दारोगा प्रसाद राय इत्यादि पिछड़े वर्ग के नेताओं को मुख्यमंत्री बनाया जाना इसका परिचायक है। लेकिन इसी के साथ इस काल में विधान सभा में 'आया राम गया राम'

राजनीति एवं दल–बदल की समस्या ने कांग्रेस की साख को और भी कमजोर एवं पतनोन्मुख कर दिया। आम जनमानस में यह भावना घर कर गई कि कांग्रेस पार्टी अब सत्तालोलुप हो गई है और जन भावनाओं के साथ इसका कोई सरोकार नहीं है। लेकिन गैरकांग्रेसी दलों द्वारा भी सत्ता का बेजा इस्तेमाल एवं जन भावनाओं की उपेक्षा ने 1972 में पुनः कांग्रेस पार्टी को बिहार में सत्तासीन कर दिया।

1967 के बाद कांग्रेस पार्टी में 'आलाकमान के फरमान' की गुंज सुनाई पड़ने लगी। 1967 में कांग्रेस बिहार में 128 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। लेकिन राज्यपाल द्वारा सरकार बनाने हेतु आमंत्रित किए जाने के बाद भी आलाकमान के निर्देश पर महेश प्रसाद सिन्हा ने सरकार गठन से मना कर दिया। दिसंबर 1970 में दारोगा प्रसाद राय की मुख्यमंत्री के रूप में विधान सभा में पराजय ने यह सिद्ध कर दिया कि बिहार कांग्रेस पार्टी अवसरवादियों की पार्टी है। 1972 में कांग्रेस पार्टी द्वारा पूर्ण बहुमत प्राप्त होने के बाद भी मुख्यमंत्री का चयन कांग्रेस विधायक दल की बैठक में न होकर आलाकमान के द्वारा मनोनीत किए जाने की परम्परा कायम रही। इस गलत प्रथा की शुरूआत तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी के समय में हुई। कांग्रेस विधायक दल के द्वारा श्रीमती गांधी को नेता के चयन हेतु अधिकृत[21] किए जाने के बाद केदार पाण्डेय 1972 में कांग्रेस विधायक दल के नेता मनोनीत किए गए। कांग्रेस की अंदरूनी कलह एवं कार्य करने हेतु स्वतंत्र वातावरण नहीं मिलने के कारण आलाकमान के निर्देश पर 2 जुलाई 1973 को उन्हें पदत्याग करना पड़ा। इनके बाद अब्दुल गफूर बिहार के मुख्यमंत्री मनोनीत हुए लेकिन जे.पी. आंदोलन से निबटने में उनकी असफलता एवं तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री एल.एन. मिश्रा के जीवन को न बचा पाने के आरोपों के कारण 6 अप्रैल 1975 को इन्हें पदत्याग के लिए मजबूर होना पड़ा। अब्दुल गफूर के बाद जगन्नाथ मिश्रा कांग्रेस विधायक दल के सर्वसम्मत नेता चुने गए (इंदिरा गांधी एवं संजय गांधी के आर्शीवाद से) और जून 1977 तक प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे। 1974 में जे.पी. के नेतृत्व में कांग्रेस के भ्रष्ट शासन के विरूद्ध छात्र आंदोलन ने कांग्रेस की नींव को हिला दिया। तत्पश्चात् इंदिरा गांधी द्वारा जून 1975 में आपात्काल की घोषणा एवं आपात्काल के दौरान पुलिस ज्यादती ने आम जनमानस को कांग्रेस के विरूद्ध कर दिया जिसका प्रतिफल 1977 के लोक सभा चुनावों एवं बिहार विधान सभा के चुनाव में कांग्रेस की पराजय के रूप में सामने आया।

1980 एवं 1985 के बिहार विधान सभा चुनाव में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिलने के बावजूद कोई भी मुख्यमंत्री लंबे समय तक पद धारण नहीं कर सका। जनता पार्टी के मुख्यमंत्रियों की कार्यशैली ने भी जनता को नाखुश रखा। जनता पार्टी की आपसी खींचतान एवं अंदरूनी कलह ने मात्र तीन वर्षों में ही नेताओं को चुनाव मैदान में ला खड़ा किया। विपक्ष के आपसी संघर्ष का फायदा पुनः कांग्रेस को मिला। 1980–90 के काल में छः कांग्रेसी मुख्यमंत्री बनाए गए जिनका औसत कार्यकाल दो वर्षों से भी

कम रहा। इस दौरान जगन्नाथ मिश्रा (08.06.1980 से 14.08.1983 एवं 06.12.1989 से 10.03.1990), चंद्रशेखर सिंह (14.08.1983 से 12.03.1985), बिंदेश्वरी दुबे (12.03.1985 से 13.02.1988), भागवत झा आजाद (14.02.1988 से 10.03.1989) एवं सत्येन्द्र नारायण सिंह (11.03.1989 से 06.12.1989) मुख्यमंत्री बने। लेकिन सभी के सभी मुख्यमंत्री आलाकमान के हाथों की कठपुतली बने रहे और येन-केन-प्रकारेण अपनी कुर्सी को बचाने की जुगत में ही अपने कार्यकाल को समाप्त किया। जनता से कांग्रेस की दूरी इतनी बढ़ गई कि जनता और कांग्रेस नदी के दो किनारे बन गये। इंदिरा गांधी के मरणोपरांत (1984) राजीव गांधी भी एक अंतराल पर मुख्यमंत्रियों को बदलने की नीति का अनुसरण करते रहे। इससे कांग्रेस पार्टी का जनाधार उतरोत्तर घटता चला गया। जगन्नाथ मिश्रा (06.12.1989 से 10.03.1990) बिहार में कांग्रेस के अंतिम मुख्यमंत्री रहे। पिछड़ी जातियों का कांग्रेस से मोहभंग तो पहले ही हो चुका था लेकिन सत्येन्द्र नारायण सिंह के कार्यकाल में भागलपुर में 1989 में हुए हिन्दू–मुस्लिम दंगा ने मुसलमानों को भी बिहार कांग्रेस से विमुख कर दिया। इस प्रकार 1990 तक आते-आते कांग्रेस का परंपरागत वोट बैंक कांग्रेस से खिसक कर क्षेत्रीय दलों के पास चला गया जिसको 2020 के विधानसभा चुनाव तक कांग्रेस अपनी ओर आकर्षित करने में कामयाब नहीं हो पाई।

1989 के आम चुनावों में कांग्रेस की पराजय एवं वी. पी. सिंह के नेतृत्व में केन्द्र में जनता दल की सरकार का गठन 1990 के बिहार विधानसभा चुनाव पर भी प्रभावकारी रहा। केन्द्र की तरह बिहार में भी जनता नए विकल्प की तलाश में थी। कांग्रेस द्वारा उत्पन्न की गई राजनीतिक रिक्तता (vaccume) का पूरा फायदा बिहार में भी जनता दल को मिला। 1990 के बिहार विधानसभा चुनाव में जनता दल को मुस्लिम, पिछड़ी जातियों एवं कुछ हद तक अगड़ी जातियों का समर्थन प्राप्त हुआ। कांग्रेस पार्टी को 324 में से 71 सीटों पर विजय प्राप्त हुई जो 1990 तक हुए विधानसभा चुनावों में कांग्रेस का सबसे निम्न प्रदर्शन था। जनता दल के उम्मीदवार लालू प्रसाद यादव मुख्यमंत्री बने और अपने मुस्लिम–यादव समीकरण के कारण जुलाई 1997 तक मुख्यमंत्री रहे। चारा घोटाला में जेल जाने के बाद उनकी पत्नी राबड़ी देवी मार्च 2005 तक मुख्यमंत्री रहीं। 1990 के बाद के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस का प्रदर्शन लगातार खराब होता चला गया। 1995 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को 342 में से 29 सीटें ही मिल पाई। 2000 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस 243 में 23 सीटें हासिल कर सकी। 2005 के फरवरी में हुए विधानसभा चुनाव में कांग्रेस 243 में 10 सीटें तथा नवम्बर 2005 में पुनः हुए चुनाव में नौ सीटें ही जीत पाई। 2010 के विधानसभा चुनाव में इसे सिर्फ चार सीटों से ही संतोष करना पड़ा। यहॉ यह गौरतलब है कि 1995 एवं 2000 के चुनावों में कांग्रेस को हासिल सीटें जनता दल एवं राष्ट्रीय जनता दल से चुनावी तालमेल का परिणाम था। 2010 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी का किसी अन्य

दल/दलों के साथ कोई चुनावी तालमेल नहीं था। 1990 के बाद कांग्रेस के परंपरागत वोट बैंक में विखराव एवं क्षेत्रीय दलों की मजबूत स्थिति ने कांग्रेस को विपक्षी दल की हैसियत से भी बाहर कर दिया। जो कांग्रेस पार्टी कभी बिहार में अपने बुते सरकार बनाने में कामयाब होती थी आज वह राष्ट्रीय जनता दल एवं जनता दल(यू) जैसी क्षेत्रीय दलों की वैशाखी बनकर अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रही है।

अक्टूबर–नवम्बर 2015 में पॉच चरणों में संपन्न हुए बिहार विधानसभा के चुनाव में कांग्रेस को उम्मीद से ज्यादा सीटें मिली। इस चुनाव में राजद, जद(यू) एवं कांग्रेस मिलकर महागठबंधन के अंतर्गत चुनावीसमर में उतरे, जबकि दूसरी ओर एनडीए के अंर्तगत बीजेपी, एलजेपी, आरएलएसपी एवं हम का गठबंधन था। कांग्रेस पार्टी 41 सीटों पर चुनाव लड़ी जिसमें उसे 27 सीटों पर सफलता हासिल हुई। पिछले दो चुनावों की तुलना में कांग्रेस का प्रदर्शन इस बार बेहतर जरूर है लेकिन यहाँ यह भी गौरतलब है कि कांग्रेस को मिली 27 सीटें उसके अपने जनाधार में बढ़ोतरी का संकेत नहीं है, बल्कि महागठबंधन में शामिल रहने के कारण जद(यू) एवं राजद के वोटों का फायदा कांग्रेस को मिला। इसलिए कुल मिलाकर कांग्रेस 2015 के विधानसभा चुनाव में भी 27 सीटों पर जीत दर्ज करने के बावजूद क्षरण की ओर ही है। हालांकि चुनाव परिणाम ने कांग्रेस के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास का संचार जरूर किया लेकिन इस आत्मविश्वास को बनाए रखने के लिए प्रदेश के स्तर पर कांग्रेस पार्टी को ठोस कार्य योजना के साथ जमीनी स्तर पर जनता एवं कार्यकर्ताओं के साथ संवाद कायम करना होगा।

कोविड–19 महामारी के संक्रमण की वजह से ऐसा लग रहा था कि नवंबर 2020 तक बिहार विधानसभा चुनाव संपन्न नहीं हो पाएगा लेकिन निर्वाचन आयोग के द्वारा अक्टूबर–नवम्बर में तीन चरणों में बिहार विधानसभा चुनाव कराने का निर्णय लिया गया। चुनाव से पूर्व ही कांग्रेस पार्टी में उम्मीदवारों के चयन को लेकर पक्षपात के आरोप लगने लगे जिसके कारण तीन वरीय कांग्रेसी नेताओं को चयन समिति से हटा दिया गया। कांग्रेस पार्टी राजद एवं वाम दलों के साथ गठबंधन कर 70 सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े किए। 10 नवंबर 2020 को आए चुनाव परिणाम के अनुसार कांग्रेस का प्रदर्शन संतोषजनक नहीं रहा। कांग्रेस पार्टी 2015 में मिली सीटों को भी न बचा सकी और पिछले विधानसभा चुनाव की अपेक्षा ज्यादा सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े करने के बावजूद मात्र 19 सीटों पर ही जीत दर्ज करने में कामयाब हो पाई जो कांग्रेस के क्षरण का परिचायक है।

कांग्रेस के राष्ट्रीय महासचिव तारिक अनवर हार का कारण उम्मीदवारों के चयन को मानते हैं और प्रदेश कांग्रेस कमेटी पर इसकी जिम्मेदारी थोपते हैं।[22] वहीं दूसरी ओर, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पूर्व सचिव शकीलउज्जमा अंसारी सार्वजनिक

रूप से दिल्ली के नेताओं पर कांग्रेस की हार का आरोप लगा रहे हैं। उन्होंने चुनाव परिणाम के मुद्दे पर राष्ट्रीय अध्यक्ष सोनिया गांधी से कांग्रेस के खराब प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार प्रभारी महासचिव शक्ति सिंह गोहिल, स्क्रीनिंग कमेटी के चेयरमैन अविनाश पांडेय, सचिव प्रभारी अजय कपूर और वीरेन्द्र सिंह राठौर को दंडित करने की मांग की है।[23] इधर महागठबंधन (राजद, कांग्रेस एवं वामपंथी दल) के सबसे बड़े घटक दल राजद ने भी महागठबंधनकी सरकार न बन पाने का कारण कांग्रेस की चुनावी विफलता को मानते हैं। बिहार विधानसभा चुनाव के साथ-साथ मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक आदि राज्यों के उप-चुनावों में भी कांग्रेस की स्थिति बदतर ही रही।

पिछले दिनों कांग्रेस के 23 नेताओं ने पार्टी की दुर्दशा पर पत्र लिखकर कांग्रेस की कार्यवाहक अध्यक्ष सोनिया गांधी का ध्यान आकृष्ट किया। उसका जवाब तो उन्हें नहीं मिला, लेकिन उनमें से कुछ नेता अपदस्थ कर दिए गए। बिहार तथा अन्य राज्यों में हार के सवाल को कुछ नेताओं ने फिर उठाया है लेकिन पार्टी नेतृत्व ऐसे गंभीर मुद्दों पर बहस की इजाजत नहीं देता है। कपिल सिब्बल एवं गुलाम नबी आजाद जैसे दिग्गज कांग्रेसी नेताओं के द्वारा कांग्रेस नेतृत्व पर उठाए गए सवाल निश्चित रूप से विचारणीय हैं, क्योंकि कांग्रेस नेतृत्व पर ऐसी ही टिप्पणी 2015 में एम. एल. फोतेदार अपनी पुस्तक *The Chinar Leaves: A Political Memoir* में कर चुके हैं। सोनिया गांधी एवं राहुल गांधी के नेतृत्व–क्षमता पर सवाल खड़े करते हुए उन्होंने लिखा कि राहुल गांधी का नेतृत्व इस देश की जनता को स्वीकार्य नहीं है क्योंकि सोनिया इंदिरा नहीं हैं और राहुल संजय नहीं हैं। कांग्रेस को नए नेतृत्व की तलाश करनी होगी।[24] ऐसे मुद्दों पर सार्वजनिक बहस हो या न हो लेकिन चिंता की बात है कि उनपर पार्टी के अंदर भी खुलकर बहस नहीं होती। कांग्रेस की हालत आज एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी–जैसी है जिसका बुरा असर देश की लगभग सभी प्रांतीय पार्टियों पर भी पड़ गया है। कांग्रेस में आज भी एक से एक अनुभवी एवं योग्य नेता हैं। उन्हें मौका मिले तो जड़वत हो चुकी कांग्रेस फिर से गतिशील हो सकती है। बराक ओबामा ने अपने संस्मरण। *Promised Land* में राहुल गांधी के नेतृत्व–क्षमता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''राहुल गांधी उस छात्र की तरह हैं, जो प्रभावित तो करना चाहता है, लेकिन कौशल का अभाव है''।[25] भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी, जो कभी कांग्रेस के वफादार सिपाही रहे थे, ने अपने संस्मरण *The Presidential Years* के चौथे खंड में लिखा है कि 2012 में उनके राष्ट्रपति बनने के बाद कांग्रेस ने दिशा खो दी थी और सोनिया गांधी पार्टी के मामले संभाल नहीं पा रही थीं। 2014 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार और आपसी कलह–पतन के लिए उन्होंने अंतरिम अध्यक्ष सोनिया गांधी और तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को जिम्मेदार ठहराया था।[26] कांग्रेस को इससे सबक लेने की जरूरत है अन्यथा वेदप्रताप वैदिक के शब्दों में ''कांग्रेस नहीं रही तो लोकतंत्र बिना ब्रेक की कार बन जायेगा''।[27]

संदर्भ सूची

1. संस्था निर्माण के रूप में नेहरू की व्याख्या के लिए देखें रजनी कोठारी, ''द मिनींग ऑफ जवाहरलाल नेहरू'', *इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* विशेष अंक, जुलाई 1964; रजनी कोठारी, ''इंस्टीट्यूशन बिल्डिंग'', *सेमिनार,* 361, सितंबर 1989, पृ. 16.
2. रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ, *इन परस्यूट ऑफ लक्ष्मी,* नई दिल्लीः ओरिएंट ब्लैकस्वान, 1987, पृ. 7, 83–102 एवं 127–172, जेम्स मैनर के द्वारा भी कांग्रेस के अवसंस्थानीकरण का वर्णन उनके आलेख ''द डायनॉमिक्स ऑफ पॉलिटिकल इंटिग्रेशन एण्ड डीसइंटिग्रेशन'', ए. जे. वाटसन एवं डी. डॉल्टन (संपा.), *द स्टेट्स ऑफ साउथ एशियाः प्राब्लम्स ऑफ नेशनल इंटिग्रेशन,* लंदनः सी. हर्स्ट, 1983, पृ. 89–110 में किया गया है।
3. रजनी कोठारी, ''डेमोक्रेसी विदाउट कनसेन्सस'', *पॉलिटिक्स एण्ड द पीपुल,* वोल. 2, पृ. 304–305 में उद्धृत।
4. लैरी डायमांड एण्ड रिचार्ड गुंथर (संपा.), इंट्रोडक्शन,*पॉलिटिकल पार्टीज एण्ड डेमोक्रेसी,* बाल्टीमोरः द जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001.
5. *विधि आयोग,* 170वीं रिपोर्ट, मई 1999.
6. रजनी कोठारी, ''द कांग्रेस सिस्टम इन इंडिया'' *एशियन सर्वे,* 4 (12), दिसंबर 1964, पृ. 1161–71; एल. एन. शर्मा एवं कृष्ण मुरारी, *राजनीतिक समाजशास्त्रः 21वीं सदी के बदलते संदर्भ में,* नई दिल्लीः ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2014, पृ. 142.
7. 'पार्टी ऑफ कंसेंसस' कांग्रेस द्वारा प्रचारित जुमला है जिसका तात्पर्य प्रत्येक क्षेत्र में अति से बचना है। समझौतावादी नीति के तहत सभी को संतुष्ट तथा शांत रखते हुए अपने आप को केन्द्र में स्थापित करना है। देखें, एल. एन. शर्मा एवं कृष्ण मुरारी, *राजनीतिक समाजशास्त्रः 21वीं सदी के बदलते संदर्भ में,* उपरोक्त।
8. 'एक दलीय प्रभुत्व' की व्याख्या सर्वप्रथम भारत के संदर्भ में डब्ल्यू. एच. मोरिस–जोन्स ने 1961 में की थी, फिर रजनी कोठारी तथा अन्य ने भी इसकी व्याख्या अपने ढंग से की।
9. रजनी कोठारी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के दो दशकों की दलीय व्यवस्था को 'कांग्रेस सिस्टम' की संज्ञा दी है जिसके माध्यम से वे भारतीय एक दलीय प्रभुत्व वाली व्यवस्था में एकमात्र कांग्रेस की प्रधानता को दर्शाना चाहते हैं। रजनी कोठारी, ''द कांग्रेस सिस्टम इन इंडिया'' *एशियन सर्वे,* 4 (12), दिसंबर 1964, पृ. 1161–73 देखें।
10. एम. पी. सिंह एवं रेखा सक्सेना, *इंडिया एट द पोल्सः पार्लियामेंट्री इलेक्शन इन द फेडरल फेज,* नई दिल्लीःओरियंट लांगमैन, 2003, पृ. 250–54. देखें, बासुकी नाथ चौधरी एवं युवराज कुमार (संपा.), *भारतीय शासन और राजनीति,* नई दिल्लीः ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2011, पृ. 354.
11. योगेन्द्र यादव, ''यूनाइटेड कलर्स ऑफ कांग्रेस'', *इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* वोल. XXXXIV एवं XXXXV, नं. 34 एवं 35, 1998–99, पृ. 21–27. देखें, बासुकी नाथ चौधरी एवं युवराज कुमार (संपा.), *भारतीय शासन और राजनीति,* नई दिल्लीःओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2011, पृ. 354–55.
12. नेहरू की मृत्यु के बाद 'कॉकस' कांग्रेस के अंदर एक छोटे से समूह के रूप में

केन्द्रीय नेतृत्व के स्तर पर उभरा जो सर्वोच्च सत्ता को वहन करते हुए कांग्रेस की नीतियां तय करता था।

13. स्टैनली ए. कोचानेक, ''मिसेज गांधी'ज पिरामिडः द न्यू कांग्रेस'', जोया हसन (संपा.), *पार्टीज एण्ड पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया (थीम्स इन पॉलिटिक्स),* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004, पृ. 76–106.
14. बासुकी नाथ चौधरी एवं युवराज कुमार (संपा.), *वही,* पृ. 354.
15. विवेक शुक्ला, ''नेहरू की विरासत देश की विरासत'', *प्रभात खबर,* पटना, 27 मई, 2015, पृ. 12.
16. नेहरू के आमंत्रण पर फोर्ड फाउंडेशन, अमेरिका के प्रशासनिक विशेषज्ञ पॉल एच. एपलबी ने उदार भाव से तत्कालीन भारतीय प्रशासन की प्रशंसा की एवं कुछ बिंदुओं पर इसने कहा कि यह दुनिया में सर्वश्रेष्ठ था। तार्किक रूप से एपलबी की इस प्रशंसा को बिहार के प्रशासन के संदर्भ में भी लागू माना जा सकता है जैसा कि उन्होंने 1953 में देखा।
17. *हिन्दुस्तान टाईम्स,* पटना, 17 सितम्बर 2015.
18. एल. एन. शर्मा, *पॉलिटिक्स एण्ड गुड गवर्नेंस, (ए स्टडी ऑफ चीफ मिनिस्टर्स ऑफ बिहारः फ्रॉम एस के सिन्हा टू नीतीश कुमार),* नई दिल्लीः रीगल पब्लिकेशन्स, 2013, पृ. 12.
19. *अय्यर कमीशन रिपोर्ट,* बिहार सरकार, 5 फरवरी 1970.
20. एल. एन. शर्मा, *वही,* पृ. 4.
21. *इंडियन नेशन,* पटना, 17 मार्च 1972, बिहार कांग्रेस विधायक दल को केन्द्रीय पर्यवेक्षक जी. एल. नंदा ने निर्देशित किया कि अपने नेता के चुनाव के लिए वो श्रीमती गांधी को अधिकृत करे। आदेशानुसार कांग्रेस विधायक दल ने इस उद्देश्य से एक विशेष बैठक आहूत कर श्रीमती गांधी को ऐसा करने हेतु अधिकृत किया। बाद में यह एक पूर्वोदाहरण बन गया एवं 1972–1977 तथा 1980–1984 काल में ऐसे सभी मामलों में इसका अनुसरण किया गया।
22. *दैनिक भास्कर,* पटना, 13 नवंबर 2020, पृ. 2.
23. *दैनिक भास्कर,* पटना, 12 नवंबर 2020, पृ. 5.
24. एम. एल. फोतेदार, *द चीनार लीव्सः अ पॉलिटिकल मेमोअर,* नोएडा(उ.प्र.): हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, 2015, पृ. 320.
25. बराक ओबामा, *अ प्रॉमिस्ड लैंड,* न्यूयार्कः क्राउन (रैण्डम हाउस), 2020; देखें, *दैनिक भास्कर,* पटना, 14 नवंबर 2020, पृ. 22.
26. प्रणब मुखर्जी, *द प्रेसिडेंशियल इयर्स,* खंड–4 (अप्रकाशित); देखें, *दैनिक भास्कर,* पटना, 16 दिसंबर 2020, पृ. 13.
27. *दैनिक भास्कर,* पटना, 19 नवंबर 2020, पृ. 8.

पंचायती राज व्यवस्था में डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम की भूमिका

ब्रजेश कुमार मिश्र

Ikjk'k% भारत गाँवों का देश है। प्राचीन काल से ही यहाँ गाँव सशक्त रहे हैं। गाँवों को स्वायत्तता शुरू से ही मिली है। आजादी के बाद इस सन्दर्भ में व्यापक प्रयास किए गए। सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 से लेकर 73वें संवैधानिक संशोधन 1992 तक इस क्षेत्र में प्रयास जारी हुए और अन्ततः इसे संवैधानिक दर्जा मिल गया, परन्तु सैद्धान्तिक आधार मिलने के बावजूद पंचायती राज अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका। 21वीं सदी में जाकर इस मुद्दों पर काम किया गया। गाँवों को सशक्त बनाने के लिए तमाम योजनाओं का श्रीगणेश हुआ। इन सभी योजनाओं में डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम मील का पत्थर सिद्ध हुआ। सम्प्रति यह कार्यक्रम आत्मनिर्भर होते गाँवों का साक्षी है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में पंचायती राज के संवैधानिक विकास का वर्णन करते हुए डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम की भूमिका का वर्णन किया गया है। साथ ही उन पहलुओं को भी उल्लिखित किया गया है जो इसमें बाधक हैं।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में विकास के ग्रामीण व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक गाँवों का अस्तित्व है और इन गाँवों ने प्रत्येक युग के विकास में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। पुरातात्विक साक्ष्यों के अवलोकनोपरान्त यह विदित होता है कि सैन्धव सभ्यता अपने प्रारम्भिक चरण में ग्रामीण ही थी, बाद में नगरीय हुई। वैदिक वाङ्मय से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में गाँवों का विशेष महत्त्व था। स्थानीय स्तर पर शासन प्रणाली का लिखित दस्तावेज इसी युग के ग्रन्थों से मिलता है। वैदिक काल में शासन कार्य का संचालन जन-इकाइयों, समितियों और सभाओं के माध्यम से होता था (अल्तेकर, 2001)। पंचायतों (ग्रामीण स्तर के शासन के लिए प्रयुक्त शब्द) को कार्यपालिका तथा न्यायिक क्षेत्र में शक्तियाँ प्राप्त थीं। नगरों का शासन गाँवों से पूर्णतः पृथक् था। यद्यपि इसके बाद ग्रामीण

प्रशासन में विभिन्न युगों में व्यापक बदलाव आया तथापि चोल साम्राज्य में ग्रामीण शासन अथवा स्थानीय शासन में व्यापक बदलाव किया गया (*Shastri, 1935*)।

सल्तनत एवं मुगल काल में शासन के अधिनायकवादी स्वरूप के कारण प्रायः स्थानीय शासन उपेक्षित रहा। ब्रिटिश काल में स्थानीय संस्थाओं की शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। भारत शासन अधिनियम 1919 के द्वारा स्थानीय इकाइयों को दो प्रमुख क्षेत्रों में कर आरोपित करने की छूट दी गई – *पहला* कर तथा दू*सरा* सेवा सम्बन्धी शुल्क। इसमें जिन स्रोतों के माध्यम से सरकार को आय होती थी उसे तालिका संख्या–1 से स्पष्ट किया जा सकता है –

rkfydk l[;k&1] LFkkuh; ljdkj dk vk; dk lkr

Øekd	dj l lEcfU/kr fo"k;	'kYd l lEcfU/kr fo"k;
1.	पथकर	जल शुल्क
2.	भवन कर	विद्युत शुल्क
3.	वाहन तथा जलयान कर	जल निष्कासन प्रणाली
4.	घरेलू नौकर सम्बन्धी कर	बाजारों के प्रयोग सम्बन्धी शुल्क
5.	मवेशी कर	–
6.	चुंगी कर	–
7.	टर्मिनल कर	–
8.	व्यापार, व्यवसाय तथा पेशों से सम्बन्धित कर	–
10.	निजी मण्डियों पर कर	–

भारत सरकार अधिनियम 1935 में करों को स्थानीय सूची से बाहर कर दिया गया। फलतः जब यह अधिनियम 1937 में लागू हुआ तो स्थानीय शासन कराधान से वंचित हो गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् गाँवों को सशक्त बनाने के निमित्त सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत 2 अक्टूबर 1952 को हुई। बाद में इसका प्रसार पूरे देश में हो गया। ग्रामीण संस्थाओं के सशक्तिकरण और विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए की गई। ऐसा इस कारण हुआ क्योंकि विधायी और संरचनात्मक उपाय ही इस सन्दर्भ में पर्याप्त नहीं थे वरन् स्थानीय निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में जनसहभागिता को आश्वासन प्रदान कर वैधता प्रदान करना भी जरूरी था (*Wadharani and Mishra, 1996*)। भारत 1947 के बाद एक नए युग में प्रवेश कर रहा था। स्वतन्त्र भारत के पास ऐतिहासिक विरासत थी। गाँव स्वायत्तता के आदर्श थे। कदाचित इसी कारण गाँधी जी ने पाँच स्तरीय स्थानीय व्यवस्था की परिकल्पना की, जिसके पाँच सोपान थे – 1. ग्राम पंचायत 2. तालुका पंचायत

3. जिला पंचायत 4. प्रान्तीय पंचायत और 5. सर्वदशीय पंचायत। पंचायत को उन्होंने सबसे निचले स्तर पर रखा और इसी को प्रशासन की वास्तविक एवं क्रियाशील इकाई बनाने पर जोर दिया। इससे भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण विभिन्न संस्थाओं में सामूहिक क्रिया को आरम्भ करता है। साथ ही इसके जरिए जनता राजनीतिक तौर पर शिक्षित होती है। कुछ मात्रा में विकेन्द्रीकरण के माध्यम से स्थापित स्थानीय सरकार एक बन्द अर्थव्यवस्था और आत्मनिर्भर व्यवस्था होती है (*Rao, 1992*)। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के इन लाभों को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न समितियों का गठन किया गया ताकि उसे संवैधानिक और व्यावहारिक रूप प्रदान किया जा सके। सबसे पहले बलवन्त राय मेहता समिति का गठन 1957 में किया गया। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में लोकतान्त्रिक संस्थाओं के विकेन्द्रीकरण की सिफारिश की, साथ ही नौकरशाही को जनता के नियन्त्रण में कार्य करने का सुझाव भी दिया। वर्श 1959 में सर्वप्रथम राजस्थान तथा आन्ध्रप्रदेश में ग्रामीण स्वशासन की व्यवस्था को अपनाया गया। मेहता समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती संरचना का ढाँचा प्रस्तुत किया परन्तु मेहता समिति की यह सिफारिश व्यावहारिक रूप नहीं ले सकी। सुधार के नाम पर ढाँचे तो बना लिए गए परन्तु उसे अमली जामा नहीं पहनाया जा सका (*Reddy, 1982*)।

पंचायती राज को व्यवहार के धरातल पर लाने के लिए 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ। इस समिति ने वर्ष 1978 में पंचायती राज प्रणाली के पुनरोद्धार और उसे सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु 132 सिफारिशों को प्रस्तुत किया। इस समिति के प्रतिवेदन पर केन्द्रीय स्तर पर तो कोई कार्यवाही नहीं हुई किन्तु कर्नाटक, पश्चिम बंगाल तथा आन्ध्रप्रदेश में पंचायतों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया (लक्ष्मीकांत, 2019, पृ0 12.2–12.3)। इसके बाद लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सन्दर्भ में 1984 के बाद प्रयास तेज हो गए। इस सन्दर्भ में जी.के. राव समिति (1985), एल.एम. सिंघवी समिति (1986), 64वां संवैधानिक संशोधन (1989), प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह के नेतृत्व में पुनः संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत (1990), 73वां संवैधानिक संशोधन (1992) और पंचायती राज अधिनियम (1996) अथवा पेसा प्रमुख हैं।

73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 इस सन्दर्भ में मील का पत्थर साबित हुआ। इस अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान में 'पंचायत' शीर्षक के साथ भाग–IX जोड़ा गया। इससे 243 से 2430 तक कई प्रावधान किए गए। पंचायतों के कार्य हेतु 29 बिन्दुओं को ग्यारहवीं अनुसूची में जोड़ा गया। इसका सम्बन्ध 243G से है। वस्तुतः इसी अधिनियम ने अनुच्छेद 40 को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया (लक्ष्मीकांत, 2019, पृ0 12.7)। पंचायतों के विकेन्द्रीकरण को संवैधानिक दर्जा मिलने के बाद गाँवों के

समग्र विकास पर जोर दिया जाने लगा। 1990 के बाद वैश्विक स्तर पर आए बदलाव (LPG) के बाद भारत सरकार ने भी अपनी आधारभूत संरचना में परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। लोककल्याणकारी राज्य होने के नाते भारतीय थिंक टैंक को बुनियादी जरूरतों को पूरा करना आवश्यक था। फलतः ग्रामीण स्तर पर कई क्षेत्रों में परिवर्तन हुए, जिनका सम्बन्ध बुनियादी विकास से था। ग्रामीण क्षेत्रों में समुचित सिंचाई की व्यवस्था, ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का संजाल, बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने पर जोर दिया गया। भारत 'विजन 2020' के सपने को साकार करने के लिए आगे बढ़ा। 21वीं शताब्दी के पहले दशक में ग्रामीण स्तर पर लोगों को रोजगार की गारण्टी देने के निमित्त मनरेगा को शुरू किया गया। केन्द्र सरकार की तमाम योजनाओं ने ग्रामीण परिवेश को सशक्त बनाने में विशेष भूमिका निभाई लेकिन जिस योजना से ग्रामीण भारत को वैश्विक स्तर की प्रत्येक गतिविधि से जुड़ने का अवसर मिला वह है – भारत सरकार का डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम। वस्तुतः इस योजना ने पंचायतीराज को एक नया आयाम प्रदान किया।

वर्तमान युग डिजिटलाइज़ेशन का युग है। डिजिटल क्रांति के बड़े फायदे और नुकसान रहे हैं। *'फिजिक्स ऑफ द फ्यूचर'* में मिचियो काकु ने लिखा है कि सोवियत संघ के विघटन का बड़ा कारण फैक्स मशीनों और कम्प्यूटर्स का उदय था। जेस्मिन क्रांति में भी सोशल नेटवर्क ने विशिष्ट भूमिका निभाई। डिजिटलाइजेशन ने आम आदमी की जिन्दगी में आमूल चूल परिवर्तन ला दिया है। वैश्विक बाजार तक इसने पहुँच आसान कर दी है। भारत मूलतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाला देश है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत हिस्सा गाँवों में निवास करता है जबकि देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का 74.40 प्रतिशत हिस्सा गाँवों में रहता है। यद्यपि बढ़ते हुए शहरीकरण के चलते कुल जनसंख्या, कार्यशील जनसंख्या एवं देश की GDP में ग्रामीण क्षेत्र की भागीदारी वर्ष-दर-वर्ष कम हुई है (तालिका संख्या–2) तथापि ग्रामीण क्षेत्र का अर्थव्यवस्था में योगदान कम नहीं हुआ है। ग्रामीण भारत को सशक्त बनाने के लिए डिजिटलाइजेशन पर जोर दिया गया।

rkfydk l[;k&2

Øekd	o"k	vk; e fgLlk	dk;'khy tul[;k ¼ifr'kr e½
1	1970-1971	62.40%	84.10%
2	1980-1981	58.90%	80.80%
3	1993-1994	54.30%	77.80%
4	1999-2000	48.10%	76.10%
5	2004-2005	48.10%	74.60%
6	2011-2012	46.90%	70.90%

स्रोत : कुरूक्षेत्र, सितम्बर, 2018, पृ0 36

भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज और ज्ञान केन्द्रित अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से मोदी सरकार ने डिजिटल इण्डिया को वर्ष 2015 में आरम्भ किया। इस योजना का व्यापक असर हो रहा है। इस प्रोजेक्ट का मूल उद्देश्य देश को नॉलेज इकोनामी में बदलना है (कुमार, मार्च 2017)। इस व्यवस्था के माध्यम से सरकार ने कई क्षेत्रों में लोगों को विविध सुविधाएँ प्रदान की हैं। तालिका संख्या–3 में कुछ प्रमुख सुविधाएँ उल्लिखित हैं –

Rkfydk l[;k&3

Øekd	lfo/kk,¡	ykHk
1	fMftVy ykdj	अपने प्रमाण पत्रों को सुरक्षित करने का माध्यम।
2	fMftVy ykbQ lfVfQdV	इसका लाभ पेंशनधारियों को मिल रहा है।
3	fMftVykbt'ku	इसके द्वारा कामगारों का ब्यौरा आसानी से उपलब्ध हो रहा है। विशेषतः पंचायतों में मनरेगा का आकड़ा।
4	fVoVj lokn	आम जनता को सरकार की योजनाओं से अवगत कराने का सशक्त माध्यम
5	enn	इसके जरिए विदेश में रहने वाला भारतीय नागरिक किसी परेशानी की स्थिति में इससे निजात पाने के लिए सहायता मांग सकता है।
6	fMtkLVj okfuax flLVe	प्राकृतिक आपदा से अलर्ट जारी करता है।
7	b-euh	इलेक्ट्रानिक मनीआर्डर सेवा।
8	ixfr	प्रो-एक्टिव गवर्नेंस एण्ड टाइमली इम्प्लीमेंटेशन के नाम से आरम्भ यह सेवा नागरिकों के लिए शिकायत निवारण की तरह है। केन्द्र सरकार के किसी भी निर्माणाधीन प्रोजेक्ट के सम्बन्ध में यहाँ शिकायत की जा सकती है।

डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम से भारत का प्रत्येक गाँव जुड़ गया है। इसने गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने में योगदान दिया है। स्वास्थ्य, कृषि, शिक्षा, अर्थव्यवस्था सभी क्षेत्रों को इस योजना ने प्रभावित किया है। कोविड–19 के प्रकोप के फैलने के बाद 'ई-हेल्थ' का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। वस्तुतः इसकी शुरूआत 15 अगस्त, 2020 को प्रधानमंत्री मोदी की घोषणा से हुई। विभिन्न **,ll** के जरिए लोगों को स्वस्थ बनाने में मदद करने का प्रयास किया जा रहा है। भारत 130 करोड़ की आबादी वाला देश है। आगामी कुछ दशकों में जनसंख्या के मामले में हम चीन से आगे निकल जाएंगे। लगातार बढ़ती जनसंख्या के कारण दो तरह की समस्याएँ आने वाली हैं – 1. खाद्यान्न संकट और 2. भूमि की कमी। दोनों समस्याएँ अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ी हैं। अब तक

हर क्षेत्र में विकास हो चुका है। अब यदि कोई क्षेत्र बचा है तो वह है कृषि क्षेत्र। अब देश के वैज्ञानिकों को उन्नत बीज के विकास के क्षेत्र में शोध की आवश्यकता है ताकि कम होते रकबे के बावजूद अनाज उत्पादन बढ़ाया जा सके। इस सन्दर्भ में प्रयास जारी है। डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम के जरिए किसानों को विभिन्न ऐप्स के जरिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। इन ऐप्स में प्लांटिक्स ऐप, फसल बीमा ऐप, खेती-बाड़ी ऐप, ई-नाम, माई एग्रीगुरू, कृषि मित्र, पूसा कृषि आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार से डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम ने ग्राम पंचायतों को समृद्ध बनाने में विशेष भूमिका निभाई है। सम्प्रति ग्रामीण जन सामान्य सरकार की भावी योजनाओं से पूर्णतः परिचित होता जा रहा है। डिजिटलाइजेशन ने निःसन्देह पंचायतों को सशक्त बनाया है। फिर भी कतिपय चुनौतियाँ भी इस क्षेत्र में अवरोध उत्पन्न कर रही हैं। इन चुनौतियों में प्रमुख हैं –

1. अभी तक पूरे भारत के ग्रामीण इलाकों का विद्युतीकरण नहीं हो सका है। जब तक पूर्ण विद्युतीकरण नहीं होगा, तब तक इस योजना का पूर्ण लाभ नहीं मिलेगा।
2. अभी भी देश की लगभग 2/3 आबादी अशिक्षित है। पहले सम्पूर्ण आबादी को शिक्षित करना होगा। अब तक की सरकारों का जोर साक्षर बनाने पर रहा है जो तकनीक के ज्ञान के लिए नाकाफी है।
3. यद्यपि विकास के विभिन्न क्षेत्रों को दृष्टिगत रखते हुए ऐप्स बनाया जा रहा है तथापि इन ऐप्स का फायदा तभी उठाया जा सकता है जब ये ऐप्स जन सामान्य की भाषा में हो ताकि जनसामान्य इससे जुड़ सके और इससे लाभ उठा सके।
4. अभी भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट स्पीड शहरों की तुलना में कमजोर है। अतः पहले इस पर काम करने की आवश्यकता है।
5. 'स्मार्ट फोन' की कीमत अभी भी आम आदमी की पहुँच से दूर है। अतः ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो सस्ते स्मार्ट फोन उपलब्ध करा सके।
6. डिजिटल तकनीक में दक्ष लोगों की कमी भी इस क्षेत्र में बाधा है।
7. साइबर अपराध को रोकना भी टेढ़ी खीर है। कदाचित इसी कारण सारी सुविधाओं के बावजूद लोग तकनीकी तौर पर स्वयं को जोड़ने से कतराते हैं।

संक्षेप में इन कमियों को दूर करके डिजिटल इण्डिया की परिकल्पना को साकार किया जा सकता है। इसे सफल बनाने के लिए ट्रेनिंग प्रोग्राम चलाए जाने चाहिए। कार्यशालाओं का आयोजन होना चाहिए। युवाओं को रोजगार के साथ ही स्वरोजगार के लिए प्रेरित करना चाहिए। हालांकि इस सन्दर्भ में 'Ease of Doing Business' की पहल भारत सरकार पहले से ही कर रही है। विश्व बैंक के अनुसार इसमें भारत 190

देशों की सूची में 63वें स्थान पर है (World Bank's Annual Report on EODB-2020)। इस क्षेत्र में और भी कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है। यदि इस क्षेत्र में प्रभावी कदम उठाया गया तो निःसन्देह पंचायती राजव्यवस्था अपने वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होगी।

संदर्भ सूची

1. Rao, N.R. (1992), Panchayti Raj A Study of Rural Local Self Government in India, Uppal Publication, N.D., pp.14
2. Reddy, G. Ram (1982), 'Panchayti Raj and Rural Development in Andhra Pradesh, India' in Uphoff Norman T. (ed), Rural Development and Local Organizatioin in Asia, Vol.I, Moemillian, New Delhi, pp.83
3. Shastri, K.A. Nilkantha (1935), The Cholas, University of Madras, pp.73
4. Wadhwani and Mishra (1996), 'Dreams and Realities : Panchayati Raj', Indian Institue of Public Administration, Preface
5. World Bank's Annual Report on EODB -2020, www.civilsdaily.com/newes/global-ease-of-doing-business-report-2020
6. अल्तेकर सदाशिव (2001), 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 172
7. कुमार, आलोक (मार्च 2017), 'डिजिटल गाँव से लिखी जा रही गाँव की इबारत' दीपिका कच्छक द्वारा सम्पादित, कुरूक्षेत्र वर्ष 63, अंक 5, पृ0 29
8. लक्ष्मीकांत, एम0 (2019), 'लोक प्रशासन', McGraw Hill Education, Chennai.

भारत में जेण्डर बजटिंग के 15 वर्ष

आर.के.चौबीसा

Lkkjk'k% *भारत में जेण्डर बजटिंग की शुरूआत वर्ष 2005-2006 से हुई। जब सरकार ने जेण्डर संवेदी बजट के विलक्षण उपकरण के रूप में इससे संस्थानीकृत करने का निर्णय लिया। संसाधन आवण्टन के प्रतिमान के माध्यम से राष्ट्रीय बजट पुरूषों एवं महिलाओं पर अलग-अलग तरीके से प्रभाव डालता है। जेण्डर दृष्टिकोण से बजट तैयार करना व उसका विश्लेषण करना जेण्डर बजट कहलाता है। यह नीति निर्माण की सभी अवस्थाओं पर जेण्डर परिपेक्ष्य को बजट में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि हम महिलाओं व पुरूषों के लिये पृथक-पृथक बजट तैयार करें। जेण्डर समानता का विकास करने के लिये राजकोषीय नीति का उपयोग जेण्डर बजटिंग है। प्रस्तुत लेख में महिला, पुरूष व उभयलिंगी को जेण्डर में सम्मिलित करते हुए जेण्डर बजट प्रणाली के उद्‌गम पर प्रकाश डाला गया है। जेण्डर बजट क्या है और क्या नहीं इसकी संक्षेप में विवेचना की गयी है व भारत में इसकी आवश्यकता एवं प्रासंगिकता पर जोर दिया गया है। जेण्डर बजट विवरण में विगत् 15 वर्षो में किए गए वित्तीय आवण्टनों का विश्लेषण किया गया है। अन्त में इस बात पर जोर दिया गया है कि महिलाओं के विरूद्ध सामाजिक-आर्थिक भेदभाव को दूर करने व जेण्डर समानता कायम करने में जेण्डर बजट कारगर साबित होगा। इससे नीति प्रतिबद्धताएं प्राप्त की जा सकती हैं। उभयलिंगी को तृतीय जेण्डर घोषित किए जाने के फलस्वरूप हमें चाहिये कि हम उनकी जरूरतों व प्राथमिकताओं का भी ध्यान रखें।*

प्रस्तावना

भारत, विश्व की अर्थव्यवस्था में शीर्ष के दस में अवस्थित है। भारत पाँचवें स्थान पर हैं यानि आज भारत विश्व की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। अर्थव्यवस्था के मामले में भारत ने ब्रिटेन और फ्राँस को भी पीछे छोड़ दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका सर्वोच्च शिखर पर है। चीन, जापान तथा जर्मनी भारत से ऊपर हैं। अमेरीकी *थिंक टैंक वर्ल्ड पॉपुलेशन रिव्यू* की रिपोर्ट (2019) के अनुसार भारत की जी.डी.पी. 2.94

लाख करोड़ डॉलर (यानि रू. 209 लाख करोड़) के स्तर पर पहुंच गयी। प्रचलित अनुमानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् 2024 तक भारतीय अर्थव्यवस्था 4.6 ट्रिलीयन डॉलर तक पहुँच जायेगी। सन् 2050 तक भारत विश्व की सबसे शक्तिशाली अर्थव्यवस्थाओं में शीर्ष के देशों में गिना जायेगा।



5 जुलाई 2019 को अपने बजट भाषण में केन्द्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने नारी को नारायणी के रूप में वर्णित किया व कहा कि महिलाओं का विकास किए बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती। महिलाओं की व्यापक भागीदारी से देश तेजी से विकास कर सकता है। उन्होंनें याद दिलाया कि स्वामी विवेकानन्द ने जेण्डर समानता के सन्दर्भ में क्या कहा था। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्वामी रामकृष्ण परमहंस को लिखे पत्र का उल्लेख करते हुए कहा कि "नारी की स्थिति सुधारे बिना संसार का कल्याण नहीं हो सकता। किसी पक्षी के लिये एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है"।[1] इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए वित्त मंत्री ने मूल्यांकन और कार्य योजना सुझाने हेतु सरकार और निजी हित साधकों के साथ विस्तृत आधार वाली एक समिति नियुक्त करने की घोषणा की जो जेण्डर बजटिंग के 15 वर्षों का आकलन करेगी।[2]

जेण्डर यानि महिला, पुरूष एवं उभयलिंगी

जनसंख्या को लेकर भारत विश्व में दूसरा बड़ा देश है। विश्व की जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत भाग भारत की जनसंख्या का है। भारत की जनसंख्या 2011 के अनुसार देश की जनसंख्या 1210.2 मिलियन है जिसमें 623.7 मिलियन पुरूष तथा 586.5 मिलियन महिलाएँ हैं। भारत की जनसंख्या का 48.5 प्रतिशत भाग महिलाओं का है। लिंगानुपात प्रति 1000 पुरूषों पर 940 महिलाएँ हैं। भारतीय जनगणना ने उभयलिंगियों को कभी मान्यता नहीं दी लेकिन वर्ष 2011 में रोजगार, साक्षरता व जाति को लेकर

तृतीय लिंग की आधार सामग्री एकत्र की गयी तो जानकारी मिली कि भारत में उभयलिंगियों की जनसंख्या 4.88 लाख है।[3] उत्तर प्रदेश में इनकी संख्या सर्वाधिक 1.37 लाख है। इनमें से केवल 30 हजार उभयलिंगी ही निर्वाचन आयोग में पंजीकृत हैं। यह समुदाय देश में एक ऐसा समुदाय है जो सर्वाधिक हाशिये पर है क्योंकि ये लोग "पुरूष" या "स्त्री" के लिंग के सामान्य वर्गों में उपयुक्त नहीं बैठते। ये लोग सामाजिक बहिष्कार से लेकर भेद-भाव, शिक्षा की कमी, बेरोजगारी, चिकित्सा सुविधाओं की कमी आदि जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं। भारत में उभयलिंगियों की अनुमानित संख्या करीबन 50 से 60 लाख के आस-पास है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को *नालसा बनाम भारत मामले* में अपने ऐतिहासिक निर्णय में उन्हें तृतीय लिंग का दर्जा प्रदान किया है व यह अंकित किया कि उन्हें स्व-घोषित लिंग निर्धारण के अधिकार प्रदान किया जाएँ।[4]

यह फैसला उभयलिंगी समुदाय को देश का नागरिक स्वीकारते हुए संविधान के अनुच्छेद 14, 16 व 21 के सन्दर्भ में उन्हें शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक स्वीकार्यता पर समान मूल अधिकार प्रदान करता है। अभी तक संसद ने गत् वर्ष उनके अधिकारों के लिये उभयलिंगी व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 पारित कर दिया हैं।[5] अन्य अनेक वैधानिक एवं प्रशासनिक मापदण्ड उठाये जाने शेष है।

भारत का संविधान पुरूष व महिला दोनों की समानता सुनिश्चित करता है। मगर, धरातल पर वास्तविकता बिल्कुल अलग है। अनेक सूचकांक यह पुष्ट करते हैं कि महिला आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक रूप से पुरूष के समान नहीं है। वर्ष 2004 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने महिला के सशक्तिकरण के लिये एक महत्वपूर्ण उपकरण तथा पर्यवेक्षित असमानता का मुकाबला करने के एक तरीके के रूप में जेण्डर बजटिंग को मान्यता प्रदान की। भारत सरकार ने "जेण्डर समता के लिये बजटिंग" को एक मिशन के रूप में स्वीकार किया तथा इस मिशन को लागू करने के लिये अनेक गतिविधियों को मिलाकर एक सामरिक विचारबन्द तैयार किया। वित्त मंत्रालय बजट के प्राथमिक उत्तरदयित्व का एक अभिकरण है जिसने जेण्डर बजटिंग की सम्भाव्यता को मान्यता प्रदान की है।

जेण्डर बजट प्रणाली का उद्‌गम

जेण्डर बजट विश्व जगत में अलग-अलग नामों से जाना जाता है यथा–जेण्डर बजट, महिला बजट, जेण्डर प्रतिसंवेदी बजट, जेण्डर उत्तरदायी बजटीकरण, जेण्डर संवेदनशील बजट, अनुप्रयुक्त जेण्डर बजट विश्लेषण आदि। सामान्यतः सभी जेण्डर बजट के समानार्थक नाम है।[6]

विकसित एवं विकासशील जगत के अनेक देशों ने जेण्डर बजट स्वीकार किया है। आस्ट्रेलिया 1984 में जेण्डर प्रतिसंवेदी बजट अपनाने वाला विश्व का पहला देश

है जो जेण्डर प्रतिसंवेदी बजट विवरण का विकास करने में अग्रणी है। अफ्रीका, अमेरीकी, एशिया, यूरोप, मिडिल ईस्ट, व पैसिफिक देशों को मिलाकर आज लगभग 90 देशों ने इस प्रणाली को स्वीकार किया है। जेण्डर बजट को लेकर आज वैश्विक सुअभ्यास सामने आ रहे हैं। ऑस्ट्रिया, बोलिविया, राण्डा जैसे देशों ने अपने संविधानों में जेण्डर बजटिंग का अधिदेश देकर उसे कानूनी रूप प्रदान किया है। मोरक्को और अफगानिस्तान ने शाश्वत् विकास लक्ष्यों के साथ अपने बजटीय प्रावधानों को मिलाया है। फिनलैण्ड, आयरलैण्ड तथा स्पेन ने राजस्व व करारोपण नीतियों के जेण्डर पक्षों का अध्ययन किया है। युगाण्डा ने स्थानीय बजट क्लब बनाया है जिसमें नागरिक व्यय प्राथमिकताओं की चर्चा करते हैं व सरकार को जेण्डर समानता पर व्यय के लिये जिम्मेदार ठहरा सकते हैं। ग्रेट ब्रिटेन तथा कनाडा में बजट का वार्षिक जेण्डर प्रतिसंवेदी विश्लेषण किया जाता है। ऑस्ट्रेलिया, फिलीपीन्स, कोरिया, कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन, दक्षिणी अफ्रीका, नेपाल व श्रीलंका तथा कुछ अफ्रीकी देशों ने जेण्डर बजट प्रणाली को अपनाया है।[7] भारत में वर्ष 2000-2001 के आर्थिक सर्वेक्षण में सामाजिक क्षेत्र पर अध्याय में पहली बार जेण्डर असमानता पर एक भाग खोला गया जिसमें स्वास्थ्य तथा श्रमिक सहभागिता के सन्दर्भ में जेण्डर समानता को लेकर महिला की प्रस्थिति का विवेचन किया गया है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने अपने वार्षिक प्रतिवेदन में "जेण्डर बजटिंग" पर नया एवं पृथक अध्याय जोड़ा। धीरे-धीरे जेण्डर बजट की धारणा बजट की मुख्यधारा में लोकप्रिय हो गया जिसकी समीक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

जेण्डर बजटिंग क्या है?

बजट को वास्तव में जेण्डर तटस्थ माना गया हैं। यह एक ऐसा दस्तावेज है जिसके माध्यम से किसी विशेष प्रयोजन के लिये वित्तीय प्रावधान किया जाता है। सामान्यतः सरकार के द्वारा बनाये गये बजट सरकार की नीतियों का एक सूचकांक होने के साथ-साथ किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के एक महत्वपूर्ण यंत्र के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। वार्षिक बजट में महिलाओं और बालिकाओं के विकास के लिये आवण्टित बजट के प्रावधान और व्यय पर समीक्षा करना जेण्डर बजटिंग कहलाता है।महिलाओं के विरूद्ध सामाजिक-आर्थिक भेदभाव को दूर करने के लिये जेण्डर बजटिंग को अपनाना आवश्यक है।

जेण्डर बजट के लिये मुख्य बजट में व्यवस्था इस तरह से की जाती है ताकि सामाजिक-लैंगिक रिक्तता को भरने के लिये सहायता मिल सके। इसमें सरकार आय व व्यय को इस प्रकार से व्यवस्थित करती है ताकि उसके लाभ से सामाजिक विकास में पीछे छूटती आधी जनसंख्या को सहायता प्राप्त हो सके तो उसे जेण्डर संवेदनशील बजट कहते हैं, इसमें वंचित, कमजोर और बेसहारा महिलाओं पर अधिक जोर होता है।

जेण्डर बजट का अर्थ लिंग-संवेदी विधि निर्माण, योजनाओं तथा कार्यक्रमों, संसाधनों के आवण्टन, कार्यान्वयन एवं निष्पादन, योजनाओं तथा कार्यक्रमों के लेखा-परीक्षण व प्रभाव मूल्यांकन तथा जेण्डर असमानताओं को कम करने के लिये आगे की सुधारात्मक कार्यवाही से है।[8] जेण्डर समानता को मुख्यधारा में लाने के लिये जेण्डर बजट एक शक्तिशाली उपकरण है ताकि विकास के लाभ को महिलाओं तक भी उतने अनुपात में पहुँचाया जाना सुनिश्चित किया जा सके जितना पुरूषों के लिये पहुँचता है। यह कोई पृथक बजट बनाने का सुझाव नहीं देता बल्कि महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए सकारात्मक कार्यवाही की अपेक्षा करता है, व्यय और सामुदायिक सेवाओं को जेण्डर दृष्टिकोण से निरीक्षित करता है। यह व्यय तथा लोक सेवा प्रदाय प्रणाली की जेण्डर के परिपेक्ष्य से निगरानी करता है। सरकारी बजट के विच्छेदन को आवश्यक बनाकर उसके जेण्डर विशेषक प्रभावों को स्थापित किया जाता है। जेण्डर बजट एक राजकोषीय नवाचार है। जेण्डर बजट आयोजना के अन्तर्गत सरकारी बजट के जेण्डर-विशिष्ट प्रभावों का पता लगाने तथा जेण्डर प्रतिबद्धताओं को बजटीय प्रतिबद्धताओं में परिणित करने हेतु सरकारी बजट का विश्लेषण किया जाता है।[9]

जेण्डर बजटिंग बजटीय का एक ऐसा दृष्टिकोण है जो लैंगिक समानता और लड़कियों व महिलाओं के विकास को बढ़ावा देने के लिये राजकोषीय नीति और प्रशासन का उपयोग करता है। इस प्रणाली की सहायता से राजकोषीय प्राधिकरण सरकार के किसी भी स्तर पर पुरूषों और महिलाओं की जरूरतों का आकलन कर सकते हैं, प्रमुख परिणामों या लक्ष्यों की पहचान कर सकते हैं, सार्वजनिक निधियों की योजना, आवण्टन और वितरण कर सकते हैं, और उपलब्धियों की निगरानी और मूल्यांकन कर सकते हैं।

जेण्डर बजटिंग यह सुनिश्चत करने की रणनीति है कि सार्वजनिक निवेश महिलाओं और लड़कियों के लिये बेहतर परिणामों में तब्दील हों। जेण्डर बजटिंग की पहलें, योजना एवं बजट चक्र के बीच हस्तक्षेप करके योजना, बजट और लैंगिक समानता के लक्ष्यों के बीच सुसंगतता की सुविधा प्रदान करती है।

संक्षेप में, जेण्डर बजट का अर्थ है:

- बजट बनाने की संकल्पना, आयोजना, स्वीकृति, क्रियान्वयन, उनकी देखरेख, विश्लेषण और अंकेक्षण को जेण्डर के नजरिये के आधार पर करना
- पुरूषों और बालकों की तुलना में महिलाओं और बालिकाओं पर सरकार द्वारा किये जाने वाले व्यय का विश्लेषण करना
- नीतियों का निर्माण, उनमें परिवर्तन और उनके प्राथमिकीकरण के लिये सरकार को सुझाव देना

यह महिला सशक्तिकरण के लिये सरकार द्वारा निर्धारित की गयी नीतियों की दिशा को मापने का एक यंत्र है। सालाना बजट में महिलाओं और बालिकाओं के विकास के लिये आवण्टित बजट के प्रावधान और खर्च कर समीक्षा करना जेण्डर बजटिंग कहलाता है। इसमें महिलाओं के लिये अलग से बजट का निर्धारण नहीं होता लेकिन आम बजट में महिला और बालिकाओं पर हुए व्यय की ऑडिट कर समीक्षा की जाती है। राज्य में जेण्डर बजटिंग एक विभाग से नहीं करवा कर केन्द्र की तर्ज पर इसे विभागवार करवाया जाना चाहिये ताकि हर विभाग की योजनाओं और कार्यक्रमों में महिलाओं और बालिकाओं की हिस्सेदारी का सही आकलन किया जा सके। इस प्रणाली में सरकारी विभागों के बजट में महिलाओं को मिलने वाले लाभ की ऑडिट कर समीक्षा की जाती है।

जेण्डरबजट क्या नहीं है?

- पुरूषों और महिलाओं के लिये पृथक-पृथक बजट बनाना नहीं है। इस प्रक्रिया के अर्न्तगत महिलाओं के लिये अलग से कोई बजट नहीं बनाया जाता।
- जेण्डर बजटिंग कोई लेखांकन कार्य नहीं है।
- बजट को दो भागों में बाँटना–यानि 50 प्रतिशत पुरूष एवं 50 प्रतिशत महिलाओं के लिये, ऐसा करना नहीं है।
- इसका अर्थ केवल हमेशा महिलाओं के लिये आवण्टनों में बढ़ोतरी करना भी नहीं है।
- इसका आशय केवल सरकार बजटों के लिये नहीं है। लोक क्षेत्र की इकाईयों, नागरिक समाज के संगठनों, गैर-सरकारी संस्थाओं आदि के बजटों को भी जेण्डर प्रतिसंवेदी बनाया जा सकता है।

जेण्डर बजट के लिये पांच–चरणीय विचारबन्द

जेण्डर बजट प्रक्रिया पांच चरणों में विभाजित की जा सकती है[10]: *चरण–1:* किसी निर्दिष्ट क्षेत्र में महिलाओं तथा पुरूषों व बालक व बालिकाओं (तथा उनके विभिन्न उप समूह) का परिस्थिति का विश्लषण, *चरण–2:* क्षेत्र विशेष की नीतियां जेण्डर मुद्दों और पहले चरण में उल्लिखित भेदभाव को किस हद तक संबोधित करता हैं। *चरण–3:* चरण 2 में उभर कर आये जेण्डर संवेदी नीतियों तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिये बजट आवण्टनों की पर्याप्तता का मूल्यांकन करना *चरण–4:* यह निगरानी करना कि क्या धनराशि नियोजित तरीके से ही व्यय हुआ या नहीं, और कौन से लाभ किस तक पहुँचे। *चरण–5:* नीति/कार्यक्रम/योजना के प्रभाव का आकलन और इसकी विवेचना चरण 1 में विवरित की गयी स्थिति में किस हद तक बदलाव हुआ है।

जेण्डर बजट की आवश्कता

यदि भारत में महिलाओं की स्थिति के सन्दर्भ में देखा जाए तो देश की जनसंख्या का कुल 48.5 प्रतिशत हिस्सा होने के बाद भी देश के कुल संसाधनों पर उनकी हिस्सेदारी बहुत ही कम है। देश के कुल सार्वजनिक व्यय का एक बड़ा हिस्सा जेण्डर न्यूट्रल क्षेत्र जैसे बिजली, प्रतिरक्षा, परिवहन आदि पर व्यय हो जाता है जिससे महिलाओं को कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है। केन्द्रीय बजट में भी सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं के लिये व्यय की जाने वाली कुल राशि का करीबन पांच प्रतिशत ही रहती है। महिलाओं व संसाधनों पर नियंत्रण व उनकी पहुंच तक असमानताओं का सामना करती है।[11] महिलाओं की कुछ विशिष्ट आवश्यकताएं होती है जिन्हें विशेष रूप से पूरा करने की आवश्कता होती है।[12] सार्वजनिक व्यय तथा नीति का एक बड़ा भाग जेण्डर तटस्थ क्षेत्र में आता है।[13]

जेण्डर बजटिंग लैंगिक समता को मुख्य धारा मे लाने का एक उपकरण है। इससे सम्पूर्ण नीति प्रक्रिया के लिये जेण्डर (महिला और पुरूष) अधारित नीति अपनाने के लिये एक प्रवेश बिन्दु के रूप में बजट का उपयोग किया जाता है। महिला और बाल विकास मंत्रालय ने नोडल ऐजेन्सी के रूप में लैंगिक समानता के लिये मिशन व्यूहनीति को अपनाया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सरकर बजट की योजना महिलाओं और पुरूषों के अन्तर की जरूरत के अनुसार बनायी जाती हैं तथा तदनुसार प्राथमिकता निर्धारित की जाती है। जेण्डर बजटिंग कानून, नीति, योजनाओं, कार्यक्रमों और योजनाओं के जेण्डर संवदेनशील निर्माण से संबंधित है, इसी प्रकार जेण्डर बजटिंग संसाधनों के आवण्टन और संग्रहण, कार्यान्वयन व निष्पादन, कार्यक्रमों और योजनाओं की निगरानी, समीक्षा, लेखा परीक्षा और प्रभाव के आकलन, और लैंगिक असमानताओं को दूर करने के लिये की जाने वाली सुधारात्मक कार्यवाही से संबंधित होती है। यह कई संस्थागत तंत्रों जैसे जेण्डर बजट विवरण, जेण्डर बजट प्रकोष्ठ, तथा महिलाओं और बालिकाओं के लिये विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से किया जाता है।

जेण्डर बजटिंग निम्नलिखित के लिये की जा सकती हैः—

- पूरा बजट
- चयनित विभागों या कार्यक्रमों का व्यय और उनका प्रभाव
- नये कार्यक्रमों और परियोजनाओं की डिजाइन और जेण्डर संवेदिता
- नये कानून

जेण्डर बजटिंग विवरण क्या है?

महिला सशक्तिकरण के क्रम में भारत सरकार ने वर्ष 2005 में यह विचार किया कि देश में लिंग आधारित बजट प्रणाली क्रमिक रूप से प्रारम्भ की जाए। इस प्रकार

सरकार ने निर्णय लिया कि उचित समयावधि में बजट आँकड़े इस तरह प्रस्तुत किए जाये कि बजटीय आवण्टनों में लिंग संवेदनशीलता स्पष्टतः नजर आये। भारत सरकार के मुख्य आर्थिक परामर्शदाता श्री अशोक लाहिड़ी की अध्यक्षता में 2003 में गठित सरकारी संव्यवहारों की वर्गीकरण प्रणाली पर विशेषज्ञ दल (Expert Group on Classification of Budgetary Transactions of the Government of India) ने जुलाई 2004 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें अर्न्तग्रस्त मुद्दों और चिन्ताओं की बड़ी रूपरेखा को रेखांकित किया गया।[14] भारत सरकार ने महिला एवं बाल विकास विभाग और राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान को ग्रामीण विकास विभाग, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, श्रम, बुनियादी शिक्षा, लघु उद्योग, शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता, और जनजाति कार्य विभागों की लोक व्यय रूपरेखा की लिंग दृष्टि, लाभ स्थिति, विश्लेषण के माध्यम से समीक्षा का संयुक्त कार्य सौंपा तथा विभिन्न विकास योजनाओं के प्रचालनात्मक दिशा-निर्देशों में विशेष परिवर्तनों की अभिशंसा की ताकि लोक व्ययों में महिला लाभार्थियों की कवरेज में सुधार किया जा सके। सरकार ने ग्रामीण महिला और उनकी संस्थाओं को भी पेयजल, स्वच्छता, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी सभी विकास योजनाओं के लिये उत्तरदायित्व उठाने के लिये प्रोत्साहित किया।[15]

वित्त मंत्री श्री पी. चिदाम्बरम ने अपना चौथा संघीय बजट (वर्ष 2005-06) 28 फरवरी 2005 को संसद में पेश किया। अपने बजट भाषण में उन्होंनें यह घोषणा की कि भारत सरकार जेण्डर बजटिंग इस वर्ष प्रारम्भ करने जा रही है जिसे एक वर्ष में संस्थानीकृत कर दिया जायेगा। इस बजट में पहली बार जेण्डर बजट विवरण (जी. बी.एस.) प्रारम्भ किया गया। स्टेटमेण्ट नं. 19, व्यय बजट खंड I, संघीय बजट 2005-06 में नौं मंत्रालयों की 10 अनुदानों की मांगे रखी गयी। बजट में जेण्डर बजट के रूप में रू. 14378.68 करोड़ के बजट अनुमान का प्रावधान किया गया।[16] यह भारत सरकार के समग्र व्यय का 2.79 प्रतिशत था। इसे जेण्डर बजट का आकार कहा जाता है। वर्ष 2006-07 के बजट में 2005-06 के बजट अनुमान रू. 14378.68 करोड़ का संशोधित अनुमान रू. 24240.51 करोड़ हो गया।[17] भारत में जेण्डर बजटिंग का लक्ष्य राजकोषीय नीति में दक्षता एवं जेण्डर समता सुनिश्चित करना था। महिलाओं के लिये पृथक बजट बनाने का कोई विचार नहीं था बल्कि राजकोषीय व्यय पर जेण्डर लेन्स लगाना था व जेण्डर विशिष्ट परिणामों पर प्राथमिकता देते हुए धनराशि का आवण्टन करना था।

जेण्डर बजटिंग विवरण में बजट आवण्टन

रेखाचित्र–1 में प्रदर्शित आधार सामग्री के अनुसार वर्ष 2005-2006 में जब जेण्डर बजट विवरण की शुरूआत हुई तक संघीय सरकार के कुल नौ मंत्रालयों व विभागों ने अपनी सूचनाएँ भेजी जिनकी कुल 10 माँगों को बजट में सम्मिलित किया गया।

j[kkfp=&1

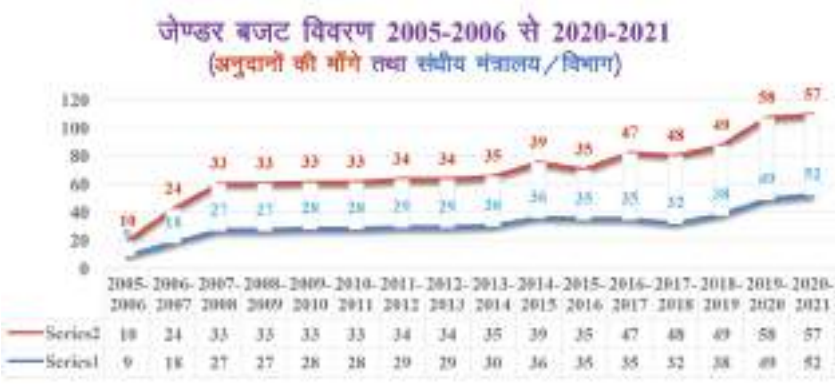

स्त्रोत– वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, केन्द्रीय बजट, बजट व्यय, खण्ड–1, जेण्डर बजट (2005-2006 से 2020-2021 तक) से संकलित

वर्ष 2006-2007 में संघीय सरकार के 18 मंत्रालयों तथा विभागों एवं पांच केन्द्र शासित प्रदेशों की 24 अनुदानों की मांगें शामिल की गयीं। आज स्थिति यह है कि जेण्डर बजट में 52 मंत्रालयों तथा विभागों एवं 58 अनुदानों की मांगें सम्मिलित है। भारत सरकार में करीबन 75 मंत्रालय व विभाग है।

रेखाचित्र–2 में जेण्डर बजट के लिये वर्षवार आवण्टित बजट राशि दिखायी गयी है।[18] वर्ष 2005-06 से लेकर 2014-2015 तक बजट आवण्टन में लगातार बढ़ोतरी हुई

j[kkfp=&2



*वर्ष 2020-2021 में दर्शायी गयी राशि बजट अनुमान है। शेष सभी संशोधित अनुमान है।

स्त्रोत– वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, केन्द्रीय बजट, बजट व्यय, खण्ड–1, जेण्डर बजट (2005-2006 से 2020-2021 तक) से संकलित

है। वर्ष 2018-2019 में भी कमी देखने को मिलती है। शेष सभी वित्तीय वर्षों में बजट आवण्टन बढ़ा है। जहां प्रारम्भिक वर्ष में रू. 24240.21 करोड़ आवण्टित किए गए वहीं आज 2020-2021 में 143461.72 करोड़ रूपये का बजट अनुमान स्वीकृत हुआ है। यह अब तक का सर्वाधिक बजट आवण्टन है।

रेखाचित्र–3 में केन्द्रीय बजट में जेण्डर बजट के लिये वर्षवार हिस्सेदारी प्रदर्शित की गयी है। यहाँ स्थिति कम-ज्यादा की देखने को मिलती है। वर्ष 2005-2006 से यह हिस्सेदारी 2.79 प्रतिशत से प्रारम्भ हुई थी जो वर्ष 2011-2012 में सर्वाधिक उच्च स्तर तक यानि 6.22 प्रतिशत तक पहुँच गयी। इसके बाद वर्षवार 2016-2017 तक लगातार कमी आती गयी। चालू वर्ष में यह हिस्सेदारी 4.72 प्रतिशत प्रदर्शित है।

j[kkfp=&3



स्त्रोत– वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, केन्द्रीय बजट, बजट व्यय, खण्ड–1, जेण्डर बजट (2005-2006 से 2020-2021 तक) से संकलित

मंत्रालयों/विभागों द्वारा भेजी गयी सूचना के आधार पर जेण्डर बजट विवरण तैयार किया जाता है। जैसाकि रेखाचित्र–4 में स्पष्ट किया गया है, वर्ष 2005-2006 से जेण्डर बजट विवरण प्रारम्भ किया गया लेकिन वर्ष 2006-2007 से इसे दो भागों में प्रस्तुत किया गया। इस विवरण में जेण्डर बजटीय आवण्टन दो भागों में वर्गीकृत कर दिखाए जाते हैं। इसमें महिलाओं के लाभ देने वाली ठोस योजनाओं के लिये बजट प्रावधान प्रदर्शित किया जाते है:[18] *पहला* भाग "अ" कहलाता है जिसमें उन योजनाओं का ब्यौरा होता हैं। इसमें महिलाओं के लिये 100 प्रतिशत प्रावधान होता हैं। *दूसरा* भाग "ब" कहलाता है जिसमें महिलाओं के लिये 30 प्रतिशत से 99 प्रतिशत तक आवण्टन करने वाले कार्यक्रम/स्कीमें दर्शायी जाती हैं। रेखाचित्र–4 से यह स्पष्ट होता है कि भाग "अ" की अपेक्षा भाग "ब" में मंत्रालय/विभाग अपनी सूचनाएं दे रहे

j[kfp=&4



स्त्रोत– वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, केन्द्रीय बजट, बजट व्यय, खण्ड–1, जेण्डर बजट (2005-2006 से 2020-2021 तक) से संकलित

हैं। इसका परिणाम यह है कि भाग "अ" की तुलना में भाग "ब" में में बजट प्रावधान अधिक है। विग्त 15 वर्षों में भाग "अ" में वर्ष 2015-2016 में न्यूनतम 14.01 प्रतिशत राशि के प्रावधान देखने को मिलते हैं वहीं दूसरी ओर वर्ष 2008-2009 में अधिकतम 41.42 प्रतिशत राशि का आवण्टन हुआ है। भाग "ब" की बात की जाये तो ज्ञात होगा कि वर्ष 2008-2009 में 58.58 प्रतिशत राशि आवण्टित की गयी जो न्यूनतम थी और वर्ष 2015-2016 में 85.98 प्रतिशत राशि आवण्टित की गयी जो अब तक की सबसे ज्यादा राशि है। चालू वर्ष में 80.08 प्रतिशत राशि आवण्टित की गयी है। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि प्रति बजट वर्ष जेण्डर बजट विवरण भारत के बजट का अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा है जो व्यय बजट के खण्ड–I में जेण्डर बजट के रूप में देखा जा सकता हैं। यह जेण्डर बजट के प्रति हमारी वचनबद्धता दर्शाता हैं।

निष्कर्ष

भारत में जेण्डर बजट ने 15 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। अब समय आ गया है कि हम एक बार अब तक किए गए प्रयासों की एक समीक्षा करें। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि महिलाओं के विरूद्ध सामाजिक–आर्थिक भेदभाव को सम्बोधित करने व जेण्डर भेदभाव कम करने में जेण्डर बजट बहुत कारगर हो सकता है क्योंकि अधिकांश नीति प्रतिबद्धताएँ तभी प्राप्त की जा सकती है यदि उनके क्रियान्वयन के लिये पर्याप्त धनराशियाँ हो। महिलाओं एवं पुरूषों की जरूरतें, चिन्तन व प्राथमिकताएँ समाज में उनकी भूमिकाओं के कारण प्रायः भिन्न-भिन्न होती हैं। जिस तरीके से सरकार धन

उगाती है व खर्च करती हैं वह तरीका महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव भी डाल सकता है।

अब तक दो ही जेण्डर थे– महिला एवं पुरूष। अब उभयलिंगी तृतीय जेण्डर है। ऐसी स्थिति में हमें बजट प्रावधानों में तृतीय जेण्डर को भी स्थान देना होगा। जेण्डर बजट विवरण में भाग "अ" व "ब" के साथ भाग "स" भी प्रारम्भ करना होगा। भाग "स" में उनके अधिकारों का ध्यान रखत हुऐ बजट प्रावधान करने होंगें। सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों में जेण्डर बजटिंग संरचनाओं/तंत्रों की स्थापना पर जोर देना और इस कार्य में सहायता करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिये। नीतियों/स्कीमों/कार्यक्रमों में जेण्डर को मुख्यधारा में लाने के लिये आन्तरिक एवं बाह्य क्षमताओं को सुदृढ़ करना और विशेषज्ञताओं का विकास करना आवश्यक है। मौजूदा कार्यक्रमों की जेण्डर लेखा परीक्षा शुरू करना समीचीन है जिसके द्वारा सेवा प्रदायगी तंत्रों की कमियों को पूरा किया जायेगा और इन्हें सुदृढ़ बनाया जायेगा। जेण्डर बजटिंग की प्रक्रिया को और अधिक सुदृढ़ बनाया जाना अपेक्षित है। इसकी पहुंच का सभी मंत्रालयों, विभागों एवं राज्य सरकारों तक विस्तार किया जा सकता है। जेण्डर बजटिंग प्रकाष्ठों को सुदृढ़ एवं सशक्त बनाकर जेण्डर बजटिंग प्रक्रिया को और अधिक संस्थागत बनाने के उपाय किए जा सकते हैं। जेण्डर बजटिंग विवरण के प्रारूप व विधि की समीक्षा की जानी चाहिये। विगत 15 वर्षों में महिलाओं के विकास पर जेण्डर बजट के प्रावधानों का क्या असर हुआ इसका प्रभाव मूल्यांकन किसी स्वतंत्र संस्था अथवा तृतीय पक्ष से करवाया जा सकता है। वित्त मंत्री द्वारा जेण्डर बजट के 15 वर्षीय कालावधि की समिति द्वारा समीक्षा कराये जाने का निर्णय बहु-प्रतीक्षित था। यह स्वागतयोग्य है।

टिप्पणियाँ

1. बजट 2019-2020 वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का बजट भाषण, भाग–"अ" 5 जुलाई 2019 पैरा 76
2. बजट 2019-2020 वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का बजट भाषण, भाग–"अ" 5 जुलाई 2019 पैरा 78
3. भारत की जनगणना, 2011
4. *नेशनल लीगल सर्विसेज ऑथिरीटी बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया,* डब्ल्यू.पी. (सिविल) नम्बर 400/2012
5. उभयलिंगी व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) विधेयक, 2019 (2019 का विधेयक संख्या 169) लोक सभा में 19 जुलाई 2019 को पुनःस्थापित किया गया जिसे 5 अगस्त 2019 को पारित कर दिया गया। विधेयक राज्य सभा ने दिनांक 25 नवम्बर 2019 को पारित कर दिया। संसद द्वारा पारित किये जाने के उपरान्त भारत के राष्ट्रपति द्वारा 5 दिसम्बर 2019 को हस्ताक्षर कर दिये। तदुपरान्त उभयलिंगी व्यक्ति (अधिकारों का

संरक्षण) अधिनियम, 2019 (2019 का अधिनियम संख्या 40) भारत का राजपत्र, भाग II–खण्ड–I, नई दिल्ली, बृहस्पतिवार, 5 दिसम्बर 2019 को प्रकाशित कर दिया गया।

6. दलाल, अन्नू, "रोल ऑफ जेण्डर बजटिंग इन डवलपमेण्ट ऑफ वुमन" *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवान्सेज इन मेनेजमेण्ट एण्ड ईकॉनोमिक्स*, वाल्यूम 5, अंक 3, मई-जून 2016, पृ. 52-58. निशा वेलेप्पन नैयर एवं जॉन एस. मूलाकटटू "जेण्डर रिस्पोन्सिव बजटिंग द केस ऑफ ए रूरल लोकल बॉडी इन केरल" सेज ऑपन, जनवरी-मार्च 2018, पृ. 1-14. जेण्डर बजटिंग के उद्‌गम के विश्वव्यापी विवेचन के लिये देखिये, जेण्डर बजटिंग हैण्डबुक फॉर गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया मिनिस्ट्रीज एण्ड डिपार्टमेण्ट्स, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2007, पृ. 10-18.

7. नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फायनेन्स की लेखा चक्रबर्ती ने विश्व आर्थिक फोरम से संकलित कर इन सुअभ्यासों का विवरण दिया है।

8. जेण्डर बजटिंग के अर्थ पर सरल विवेचन के लिये देखिये, जेण्डर रिस्पोन्सिव बजटिंग इन एशिया एण्ड द पैसिफिक–की कन्सेप्ट्स एण्ड गुड प्रैक्टिसेज, एसकेप, 2018, पृ. 5-10. इसके अलावा, रूद्रा, शालिनी, जेण्डर रेस्पोन्सिव बजटिंग–ए टास्क अहैड फॉर इण्डियाज 15 फायनेन्स कमीशन, ओआरएफ ऑकेजनल पेपर, अगस्त 2018, पृ. 5, साथ हीजेण्डर रिस्पोन्सिव बजट नेपाल शासन, वित्त मंत्रालय, बजट एण्ड प्रोग्राम डिवीजन, जेण्डर रिस्पोन्सिव बजट कमेटी, काठमाण्डू अगस्त 2008.

9. चक्रवर्ती, लेखा, ए केस स्टडी ऑफ जेण्डर रिस्पोन्सिव बजटिंग इन इण्डिया, कॉमनवैल्थ सेक्रेटेरिएट, 2013, पृ. 1.

10. जेण्डर बजटिंग इण्डियाः ए टूल ऑफ वीमन्स एमपावरमेण्ट, लोक सभा सचिवालय, रिसर्च एण्ड इन्फोरमेशन डिवीजन, इन्फोरमेशन बुलेटिन, नं. LARRDIS (EF)2016/बाई. बी.1, पृ. 2. साथ ही देखिये, जेण्डर रिस्पोन्सिव बजटिंग इन एशिया एण्ड द पैसिफिक–की कन्सेप्ट्स एण्ड गुड प्रैक्टिसेज, एसकेप, 2018, पृ. 7.

11. तत्रैव, पृ. 2.

12. तत्रैव, पृ. 2.

13. तत्रैव, पृ. 2.

14. क्लासिफिकेशन ऑफ गवर्नमेण्ट ट्रांजेशन, रिपोर्ट ऑफ द एक्सपर्ट ग्रुप कान्टीट्यूटेड टू रिव्यू द क्लासिफिकेशन सिटिम फॉर गवर्नमेण्ट ट्रांजेशन, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, जुलाई, 2004, पृ. 1-78

15. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, यूनियन बजट 2005-2006 स्टेटमेण्ट नम्बर 19 लिंग आधारित बजट व्यवस्था, एक्सपेण्डिचर बजट, वाल्यूम I, 2005-2006, पृ. 50

16. तत्रैव, पृ. 50-51.

17. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, यूनियन बजट 2006-2007 स्टेटमेण्ट नम्बर 20 लिंग आधारित बजट, एक्सपेण्डिचर बजट, वाल्यूम I, 2006-2007, पृ. 55

18. जेण्डर बजट के लिये वर्षवार आवण्टित बजट राशि के विश्लेषण के लिए देखिये, दास, सुब्रात एवं यामिनी मिश्रा, "जेण्डर बजट स्टेटमेण्ट–मिसलीडिंग एण्ड पैट्रिआरकल एज्जमशन्स", *इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, जुलाई 29, 2006, पृ. 3285-3287,

घई, संजय कुमार एवं सत्य नारायण मिश्रा, जेण्डर बजटिंग इन इण्डियाः एन इम्पैक्ट एनालिसिस, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसेन्ट टैक्नोलॉजी एण्ड इजीनीयरिंग, वाल्यूम 7, अंक 6, मार्च 2019, पृ. 1716-1722, मेहता, आशा कपूर, "यूनियन बजट 2020-2021 : ए क्रीटिकल एनालिसिस फ्राम द जेण्डर पर्सपैक्टिव", *इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, आईएसएसएन 2349-8846 (आनलाईन), मेहता, आशा कपूर, "यूनियन बजट 2020-2021 : कनट्रास्टिंग स्टेट्स एण्ड द सेंटर्स एप्रोच टू जेण्डर बजटिंग", *इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, आईएसएसएन 2349-8846 (आनलाईन)

भीमराव अंबेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा

शीला कुमारी

lkjk'k *सामाजिक न्याय की अवधारणा का अभिप्राय है कि नागरिक-नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न माना जाए और प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूर्ण अवसर सुलभ हो। सामाजिक न्याय की अवधारणा में एक उद्देश्य समाहित है कि व्यक्ति का शोषण किसी भी रूप में न हो और उसके व्यक्तित्व को मात्र साधन न मानकर एक पवित्र सामाजिक न्याय की सिद्धि के लिए माना जाए। सामाजिक न्याय की माँग है कि समाज के सुविधाहीन वर्गों को अपनी सामाजिक, आर्थिक असमर्थताओं पर काबू पाने और अपने जीवन स्तर में सुधार करने के योग्य बनाया जाए। इस आलेख के अंतर्गत बताया गया है कि डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक न्याय के माध्यम से समाज की अस्वस्थ परंपराओं को समाप्त कर समानता पर आधारित नया समाज बनाने का जोरदार आंदोलन छेड़ा। उनके सामाजिक न्याय से संबंधित चिंतन का इस आलेख में विश्लेषण किया गया है और बताया गया है कि भारत के नागरिकों, सभी वर्गों और धर्मों के लोगों के बीच मानव मूल्यों तथा आधारों का समावेशन है। सामाजिक न्याय की प्रक्रिया से समाज की व्यवस्था न्यायोचित बनती है तथा राष्ट्रीय जीवन की समरसता की दिशा में अभिवृद्धि होती है।*

भूमिका

आज के बदलते सामाजिक परिवेश में सामाजिक न्याय समाज के सर्वांगीण विकास के लिए एक आवश्यक शर्त है। भारतीय संविधान में निहित सामाजिक दर्शन समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय की बुनियाद रखता है। समाज के आखिरी पायदान पर खड़े जरूरतमंदों को संविधान द्वारा दी गई सुविधाओं को यदि उन तक पहुँचाने में हम समर्थ नहीं हैं तो न्याय की परिकल्पना अधूरी है। **Mk- Hkhejko vEcsMdj** की मान्यता है कि अधिक-से-अधिक सामाजिक हित में न्याय

का अनुपालन होना ही सामाजिक न्याय का आदर्श है। इसी कारण उन्होंने हिंदुओं में अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों को संगठित कर उन्हें सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्ति के लिए संघर्ष करने के लिए उत्प्रेरित किया।[1] उनका विचार था कि न्यायपूर्ण समाज में परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर यदि एक करूणा से भरे समाज का निर्माण करे तो समाज का सर्वांगीण विकास संभव है और एक करूणा भरा समाज तभी निर्मित होगा जब समाज के सभी लोगों के दुःख दर्दों का लेखा-जोखा हो। उनकी मान्यता है कि यह तभी संभव है जब समाज में समरसता आएगी और यह सभी नागरिकों के सामाजिक दायित्वों के निवर्हन से पूरी होगी।

अंबेडकर के सामाजिक न्याय का अर्थ एवं परिभाषा

सामाजिक न्याय समाज के प्रत्येक उस व्यक्ति को गरिमा प्रदान करता है जिसकी यह मान्यता रही है कि समाज के सभी प्रकारों के अन्यायों का प्रतिकार होना चाहिए। ऐसे ही सामाजिक न्याय समाज में लाने का स्वप्न डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित तथा अन्य शोषित वर्गों के उत्थान के संदर्भ में देखा। उन्होंने न्याय की इस ज्योति को समाज के कमजोर वर्गों के सहयोग से जलाने का हरसंभव प्रयास किया। समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का न्याय से वंचित होना सबसे बड़ा सामाजिक अन्याय है। ऐसे उपेक्षित वर्ग के अंतर्गत अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, अन्य पिछड़े वर्ग, महिलाएँ, बाल श्रमिक तथा बंधुआ मजदूर आदि सम्मिलित हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय का अभिप्राय आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में न्याय की स्थापना करना है। उनके विचार में स्वतंत्रता सामाजिक न्याय का एक ऐसा अस्त्र है जो कुछ मौलिक अधिकारों पर बल देती है। स्वतंत्रता ही व्यक्ति की अंतर्निहित शक्तियों को जगाती है और इस पर किसी तरह की रोक से व्यक्ति की सृजनशील शक्तियाँ और प्रतिस्पर्द्धा की भावना दब जाती है। इसका विपरीत प्रभाव समाज के विकास पर पड़ता है। व्यक्तियों के बीच समानता समाज के विकास की दिशा को आगे बढ़ाती है। सामाजिक न्याय की अवधारणा ने आधुनिक समय में व्यक्ति को स्वतंत्रता व समानता के विभिन्न प्रावधानों के साथ-साथ रंग, लिंग व जन्मजाति भेदभाव की समाप्ति तथा शोषण और बेगार से मुक्ति पर बल दिया है। डॉ. भीमराव अंबेडकर का उद्देश्य सामाजिक न्याय एवं समरसता पर आधारित कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था। उनकी दृष्टि में सामाजिक न्याय के सिद्धांत का सीधा संबंध देश की अखंडता से है। वे मानते हैं कि भारत में रहने वाले सभी नागरिक हिंदू, जैन, बौद्ध, यहूदी, पारसी, मुस्लिम और इसाई अंतर्धार्मिक होने के बावजूद समानता के सिद्धांत के तहत आपस में भाई-भाई हैं। इस दृष्टि से बाबा साहेब अंबेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय का विचार लोगों में मात्र राष्ट्रीय भौतिक लाभों का सिर्फ न्यायोचित वितरण नहीं है, वरन् वह मूलतः ऐसी जीवन पद्धति पर बल देता है जो पारस्परिक मान-सम्मान, मैत्रीभाव,

समान नागरिक होने की उत्कंठा, राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में भागीदारी आदि पर आधारित होता है। इस दृष्टि से सामाजिक न्याय का मानदंड न सिर्फ भौतिक प्रगति, न सिर्फ शारीरिक भूख-प्यास मिटा देना और न कुछ सुख-सुविधाएँ या सरकारी नौकरी देना है, वरन् इनसे भी महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि देश के सभी नागरिकों, सभी वर्गों और धर्मों के बीच मानव मूल्यों तथा आधारों का समावेशन हो। ऐसी प्रक्रिया से सामाजिक व्यवस्था के न्यायोजित होने का अवसर मिलता है जिससे राष्ट्रीय जीवन में समरसता की वृद्धि होती है। डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचार में, ''न्यायपूर्ण समाज वह है, जिसमें परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर एक करूणा से भरे समाज का निर्माण करें''।[2] एक करूणापूर्ण समाज का निर्माण तभी होगा जब समाज में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के दुःख दर्दों का लेखा-जोखा हो और यह तभी संभव है जब समाज में समरसता रहे और समरसता तभी आ सकती है जब समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करे। सामाजिक न्याय की अवधारणा ऐसे सभी लोगों के कल्याण की हिमायत करती है जो सदियों से अपने को दबा महसूस कर रहे हों। ओम प्रकाश गाबा के विचार में सामाजिक न्याय वह सिद्धांत है जो समुदाय के मूल्यवान संसाधनों (धन–संपदा, पद प्रतिष्ठा और शक्ति) को गिने-चुने लोगों के हाथों में केंद्रित होने से रोकने की माँग करता है और ऐसी समाज–व्यवस्था के निर्माण का समर्थन करता है जिसमें निर्धन और निर्बल वर्ग अपनी योग्यता, परिश्रम और आवश्यकता के आधार पर इन संसाधनों का उपयुक्त हिस्सा प्राप्त कर सकें।[3] अतः सामाजिक न्याय वह सिद्धांत है जो समाज व्यवस्था में निहित अन्याय के निराकरण की माँग करता है। इसका विचार क्षेत्र कानूनी न्याय से अधिक विस्तृत और व्यापक है। सामाजिक न्याय का प्रवर्तन एक जटिल समस्या है जब समाज व्यवस्था के अंतर्गत कुछ व्यक्तियों या वर्गों के लिए ऐसी स्थिति और भूमिका निर्धारित कर दी जाती है कि उनका कोई दोष न होने पर भी उन्हें लगातार आत्म विकास के अवसरों से वंचित रखा जाता है। ऐसे व्यक्तियों या वर्गों को सामाजिक अन्याय का शिकार माना जाता है। ऐसी स्थिति में उन्हें सामाजिक अन्याय से मुक्त करने के लिए सामाजिक न्याय की माँग उठाई जाती है ताकि समाज व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करके उन लोगों की सामाजिक अक्षमता को दूर किया जाए और उन्हें परंपरागत भेदभाव की बेड़ियों से मुक्त कराते हुए ऐसे अवसर सुलभ कराए जाएँ जिनसे वे न सिर्फ सम्मानपूर्ण जीवन जी सकें बल्कि अपनी योग्यता और परिश्रम के बल पर अपना विकास भी कर सकें। संक्षेप में, सामाजिक न्याय का सिद्धांत यह माँग करता है कि सामाजिक जीवन में सब मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाए, स्त्री-पुरुष, गोरे-काले या जाति, धर्म, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को बड़ा-छोटा या ऊँचा-नीचा न माना जाए, शिक्षा और उन्नति के अवसर सबको समान रूप से सुलभ हों और सब लोग मनुष्य-मनुष्य के नाते मिल-जुल कर साहित्य, कला, संस्कृति और तकनीकी साधनों का उपयोग और उपभोग कर सकें।

न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना में राज्य की सकारात्मक भूमिका

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने राज्य व्यवस्था तथा उसकी आवश्यकता और सामर्थ्य में अटूट विश्वास प्रकट किया। उनके विचार में एक अच्छे समाज की स्थापना के लिए राज्य का रहना आवश्यक है। वे उदार लोकतंत्रवादी विचारधारा के हिमायती थे और चाहते थे कि एक न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना में राज्य सकारात्मक भूमिका का निवर्हन करे। उनकी मान्यता थी कि यदि राज्य सभी वर्गों एवं व्यक्तियों के भौतिक अधिकारों की सुरक्षा करने तथा उनके सामाजिक तथा आर्थिक दाँवों में न्यायोचित संतुलन स्थापित करने में समर्थ हो जाता है तो उसे राज्य के सभी नागरिकों की आज्ञाकारिता सुलभ हो जाती है। राज्य द्वारा व्यक्ति के कतिपय मौलिक अधिकारों का हमेशा सम्मान किया जाना चाहिए। मानव सम्मान को बहुत ऊँचा स्थान देते हुए वे मानते थे कि व्यक्ति और राज्य साथ-साथ सम्मानपूर्वक रह सकते हैं। उनकी मान्यता थी कि राज्य समाज से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि यदि समाज का अस्तित्व नहीं होगा तो राज्य का अस्तित्व संभव नहीं है। उनके विचार में एक न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए राज्य के निम्नलिखित तीन प्रमुख उद्देश्य हैं[4] –

1. राज्य अपने प्रत्येक नागरिक की जीवन स्वतंत्रता, वाक् स्वतंत्रता तथा निष्ठा स्वतंत्रता की रक्षा करे।
2. सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक असमानता को समाप्त करते हुए राज्य निम्न वर्गों को बेहतर सुविधाएँ प्रदान करे, तथा
3. राज्य अपने प्रत्येक नागरिक को भय एवं जरूरत की चिंता से मुक्त करे।

उपर्युक्त तथ्य बताते हैं कि बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर राज्य की शक्तियों को सीमित एवं मर्यादित रखते हुए चाहते थे कि राज्य समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित वर्गों के कल्याण के लिए सकारात्मक भूमिका निभाए।[5]

सामाजिक-अर्थिक जीवन में घोर विषमताओं की समाप्ति

डॉ. अंबेडकर की मान्यता थी कि संसदात्मक शासन प्रणाली में बहुमत का शासन हो जो अल्पमत की अवहेलना न करे। वे चाहते थे कि बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यक वर्ग के हितों का ध्यान रखे तथा कार्यपालिका में अल्पसंख्यकों के वास्तविक प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाए। उनके विचार में संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक-आर्थिक जीवन में घोर विषमताएँ (glaring inequalities) न रहें, अर्थात समाज में ऐसा न हो कि सारा बोझ कुछ वर्गों पर डाल दिया जाए और सारे विशेषाधिकार किसी अन्य वर्ग के हिस्से में आ जाएँ। अंबेडकर का मानना है कि ऐसा भेदभाव सामाजिक दरार (social cleavage) को उत्पन्न करता है जिसमें खूनी क्रांति के बीज अंकुरित होने लगते हैं। उन्होंने संसदीय

लोकतंत्र की सफलता के लिए बहुदलीय प्रणाली और प्रभावशाली विपक्ष की भी अनुशंसा करते हुए कहा है कि लोकतंत्र में अल्पमत पर बहुमत के अत्याचार की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। अल्पमत के मन में सुरक्षा की भावना लोकतंत्र का आधार स्तंभ है।

अंबेडकर के सामाजिक न्याय के आधार स्तंभ

भीमराव अंबेडकर का मानना था कि मानव समाज में दुःख हैं जिन्हें दूर करने के लिए आर्थिक प्रयासों की आवश्यकता है।[6] उनके विचार में निर्धनता सभी बुराइयों की जड़ है। वे चाहते थे कि राजनीतिक शक्ति ऐसे व्यक्तियों के हाथों में हो जो समाजवादी आदर्शों के प्रति समर्पित हैं। उनके अनुसार समाजवाद निर्धनों तथा अस्पृश्यों को शोषण से बचाने वाला हथियार है।[7] उनके सामाजिक न्याय के निम्नलिखित आधार स्तंभ थे–

जाति प्रथा तथा वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन

अंबेडकर एक सामाजिक क्रांतिकारी थे। वे हिंदुओं (ब्राह्मणों) के हाथों अपमानित होने वाले दलित वर्ग के उद्धारक थे। उन्होंने दलित समुदाय को तिरस्कार तथा अधीनता के उस दलदल से निकाला जिसमें धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों ने उन्हें फँसा दिया था। बालगंगाधर तिलक की भाँति उनका मत था कि प्रत्येक को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ता है। अधिकार दान में नहीं दिए जाते। इसी प्रकार, प्रत्येक को पूर्वस्थापित सामाजिक संरचना, रीति-रिवाजों, विश्वासों व व्यवहार के विरूद्ध लड़ना होगा। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''*शूद्र कौन थे ?*'' में मनु द्वारा निर्दिष्ट वर्ण-व्यवस्था को अस्वीकार कर वेदों में वर्णित चतुवर्ण-व्यवस्था का खंडन किया जिससे ब्राह्मणों की तुलना पुरुष के मुख से, क्षत्रियों की भुजाओं से, वैश्यों की जंघाओं से तथा शुद्रों की पगों से की गई है। यह सिद्धांत असमानता का द्योतक है। उनके अनुसार वर्ण-व्यवस्था पर आधारित हिंदू समाज शोषण और असमानता को बढ़ावा देता है। अस्पृष्ता वर्ग वर्ण व्यवस्था की उत्पति है जिसमें ब्राह्मणों को ऊँच स्थान प्राप्त है तथा अस्पृश्यों को शोषण और दमन का शिकार होना पड़ता है। अतः अस्पृश्यता निवारण व भारतीय समाज में सुधार का एक ही उपाय है कि वर्ण-व्यवस्था का अंत कर दिया जाए। उनके विचार में जाति प्रथा के चलते हिंदू समाज असंख्य इकाईयों में विभाजित हो गया। वे मानते हैं कि जाति विद्वेष के चलते ही हिंदू विचार में जो समाज ऊँच-नीच के विचार से विभिन्न संप्रदायों में विभाजित हो, उसमें लोकतंत्र की व्यवस्था कर देने के बावजूद 'सांप्रदायिक बहुमत' और 'सांप्रदायिक अल्पमत' उभरकर सामने आते हैं। इसीलिए उन्होंने कहा, ''भारत की जाति प्रथा लोकतंत्र के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है''[8] और उन्होंने चेतावनी दी कि भारत में वीर-पूजा की भावना लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। भारतीय जाति प्रथा का विश्लेषण अपनी पुस्तक 'Caste in India, Their

Mechanism, Genesis and Development (1915)' में प्राचीन समय से भारत में चली आ रही सामाजिक व्यवस्था व बंधन आदि पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संपूर्ण समाज की भलाई और विकास के लिए चली आ रही जाति प्रथा, सती प्रथा आदि को सामाजिक उन्नति के मार्ग का रोड़ा माना है। अपनी दूसरी पुस्तक 'Annihilation of Caste (1936)' में उन्होंने बताया है कि जाति प्रथा एवं वर्ण विभिन्नता से भारतीय सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही है।

अस्पृश्यता (छुआछूत) समाप्ति

जाति प्रथा की उपज अस्पृश्यता और छुआछूत की भावना है जिसके अनुसार शूद्रों को अस्पृश्य बनाकर निकाल दिया गया। डॉ. अंबेडकर ने विविध दिशाओं से अस्पृश्यता के दुर्दांत राक्षस पर प्रहार किया। वे अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियों के मंदिर प्रवेश, कुँओं से पानी भरने, उनके बच्चों के स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने, सरकारी नौकरी तथा सेना में भर्ती होने के अधिकार के हिमायती थे।[9] अस्पृश्यता बाह्मणवाद की देन है जिसमें गौ-माँस खाने वालों तथा ब्राह्मणों द्वारा वर्जित नियमों को भंग करने वालों को अस्पृश्य या अछूत बना दिया गया। हिंदू समाज में ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देने वाले बौद्धों को भी इसी वर्ग में धकेल दिया गया। अतः अंबेडकर के विचार में निवारण के लिए ब्राह्मणवाद तथा ब्राह्मण शास्त्रों की समाप्ति आवश्यक है जो सिर्फ राज्य की सहायता से ही किया जा सकता है। इसके लिए अंबेडकर ने निम्नलिखित बातें कहीं :

1. एक समतापरक सामाजिक न्याय–व्यवस्था की जाए।
2. दलित वर्गों को सभी स्तरों पर संगठित करके अनेकानेक कार्यक्रम एवं अभियान चलाए जाएँ।
3. सवर्ण वर्गों को अपने अन्यायपूर्ण, असमान तथा शोषणकारी दृष्टिकोण को बदलने के लिए विवश किया जाए।
4. स्वयं दलित वर्गों को शिक्षित किया जाए।
5. हिंदू-धर्म की मूल मान्यताओं एवं शास्त्रीय अवधारणाओं में परिवर्तन किया जाए जैसे– हिंदू धर्मग्रंथ का एक ही मान्य प्रमाणिक ग्रंथ हो, पुजारी पंडों, पुरोहितों आदि का पद वंशानुगत न होकर योग्यता तथा परीक्षा पर आधारित सबके लिए उपलब्ध हो, पुरोहितों को राज्य कर्मचारी माना जाए, अंतर्जातीय विवाह को बढ़ावा दिया जाए,[10] अस्पृश्य वर्गों को विधानमंडलों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया जाए जैसे अनेक सुझावों को अस्पृश्यता निवारण के लिए अंबेडकर ने आवश्यक माना। अंबेडकर ने कहा था कि यदि भारतीय समाज के निम्न वर्गों को शिक्षा दी जाए तो भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त जाति प्रथा निर्मूल हो जाएगी। ''यदि भारत सरकार और अमेरिका फांऊडेशन द्वारा भेदभावपूर्ण शैक्षणिक

सहायता दी जाती है तो भारत में जाति-व्यवस्था की जड़ें अधिक सबल एवं सुदृढ़ होंगी। इन लोगों को शिक्षा संबंधी सुविधाएँ देना, जो जाति-व्यवस्था का अंत चाहते हैं, लोकतंत्र के आधारों को सुदृढ़ बनाएगा। ऐसा करने से लोकतंत्र सुरक्षित हाथों में पहुँच जाएगा''।[11]

समानता का सिद्धांत

बाबा साहेब की मान्यता थी कि व्यक्तियों में सिर्फ राजनीतिक समानता और कानून के समक्ष समानता स्थापित करके समानता के सिद्धांत को पूरी तरह सार्थक नहीं किया जा सकता। जबतक उनमें सामाजिक–आर्थिक समानता स्थापित नहीं की जाती तबतक उनकी समानता अधूरी रहेगी। भारतीय संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते समय उन्होंने संविधान सभा में कहा था, ''इस संविधान को अपना कर हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। इससे राजनीतिक जीवन में तो हमें समानता प्राप्त हो जाएगी, परंतु सामाजिक और आर्थिक जीवन में विषमता बनी रहेगी। राजनीति के क्षेत्र में तो हम 'एक व्यक्ति, एक वोट, एक मूल्य (one man, one vote, one value) के सिद्धांत को मान्यता प्रदान कर देंगे, परंतु हमारा सामाजिक और आर्थिक ढाँचा इस ढंग से नहीं बदल जाएगा, जिससे 'एक व्यक्ति, एक मूल्य' के सिद्धांत को सार्थक किया जा सके।'' दूसरे शब्दों में, समानता का सिद्धांत सच्चे अर्थ में तभी सार्थक होगा जब मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अर्थात राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति की समान नैतिक मूल्यवत्ता (Equal Moral Worth) को साकार किया जा सके। संविधान का वर्तमान स्वरूप इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए पर्याप्त नहीं था। इसीलिए डॉ. अंबेडकर ने इस स्थिति पर चिंता प्रकट करते हुए यह प्रश्न उठाया था, ''हम कब तक इन विरोधाभासों से भरा जीवन जीते रहेंगे ? हम कब तक सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को अपनाने से इनकार करते रहेंगे''?[12] भारत के सामाजिक जीवन में विषमता एवं अन्याय का सजीव विवरण डॉ. भीमराव अंबेडकर ने अपने nk महान ग्रंथों– 'जाति प्रथा का उन्मूलन– 1936' (Annihilation of Caste- 1936) और 'शूद्र कौन थे ?–1946' (Who Were the Shudras ?- 1946) के अंतर्गत दिया है। वे उन लोगों के विचारों से सहमत नहीं थे जो देश की स्वाधीनता के लक्ष्य के सामने सामाजिक सुधार के लक्ष्य को गौण मानते थे। उनका कहना था कि भारतीय समाज जितना विकृत हो चुका था उसमें सुधार हमारा सर्व प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए, अन्यथा विदेशी शासन से प्राप्त स्वाधीनता निरर्थक हो जाएगी। उन्होंने लिखा है कि महाराष्ट्र में पेशवाओं के शासन के अंतर्गत अस्पृश्य लोगों को उन सड़कों पर चलने की अनुमति नहीं थी जिनका प्रयोग सवर्ण हिंदू करते थे, ताकि इनकी छाया पड़ने से कोई सवर्ण हिंदू भ्रष्ट न हो जाए। अस्पृश्य जाति के व्यक्ति को अपनी कलाई या गर्दन पर काला धागा बाँधना पड़ता था ताकि सवर्ण हिंदू उसे दूर से पहचान लें और भूल से भी उन्हें छू न बैठें। पूना में अस्पृश्य व्यक्ति को अपनी कमर में झाड़ू बाँधकर चलना पड़ता था

जिससे वह अपने रास्ते की धूल को हटाता चले ताकि कोई सवर्ण हिंदू वहाँ चलने से भ्रष्ट न हो जाए। डॉ. अंबेडकर ने मध्य भारत में बलाई जाति की दुर्दशा का चित्रण किया है और गुजरात तथा राजस्थान में क्रमशः 1935 और 1936 में अछूतों पर जो अत्याचार हुए थे, उनकी चर्चा भी की है। उन्होंने तर्क दिया कि जब अपने ही देश में अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों को पब्लिक स्कूलों में पढ़ने की अनुमति नहीं थी, उन्हें सार्वजनिक कुँओं से पानी नहीं भरने दिया जाता था, उन्हें अपनी पसंद के कपड़े और गहने पहनने या खाना खाने की आजादी नहीं थी, तब क्या यह देश राजनीतिक शक्ति का सही प्रयोग करने के लिए सक्षम था ? यदि हम **tku LVvV fey** की यह बात मानते हैं कि किसी देश को दूसरे देश पर शासन नहीं करना चाहिए तो हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी वर्ग को दूसरे वर्ग पर शासन नहीं करना चाहिए।[13]

भारतीय समाज के कट्टर व रूढ़िवादी विचारों का विरोधी

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर आधुनिक भारत के एक महान सुधारक हुए जिन्होंने सामाजिक न्याय हेतु अपनी सारी जिंदगी गुजार दी। उन्होंने भारतीय समाज की मूढ़ता, जड़ता व विडंबना को बहुत करीब से देखा और समाज के संपूर्ण उत्थान में कतिपय हिंदू रूढ़िवादिता और कट्टरपन को बाधा माना। उन्होंने पूर्ण भारतीय समाज को यथार्थ के चश्मे से देखते हुए बौद्धिक विश्लेषण किया। भारतीय समाज के कट्टर व रूढ़िवादी विचारों को नकारते हुए उन्होंने एक नए समाज के निर्माण का आह्वान किया। उन्होंने दलितों, वंचितों, दीनहीन व्यक्तियों, श्रमिकों, निम्न जाति के लोगों के लिए प्रेरणा का कार्य किया। वेद हिंदूओं का प्राचीन काल से एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ रहा है और हिंदू समाज वेदों से काफी प्रभावित होता रहा है। इस संबंध में डॉ. अंबेडकर ने कहा, ''सही सामाजिक दृष्टिकोण रखकर ही वेदों के मायने लगाए जाएँ तो अच्छा होगा''।[14] उन्होंने बताया कि हिंदू धर्म के धार्मिक अनुशासन अर्थात कट्टरपन के चलते भारत में जाति व्यवस्था की रूढ़िवादिता बढ़ी और हमारा भारतीय समाज तितर-बितर हो गया है। उनके विचार में हिंदू धर्म के कतिपय प्रावधानों के चलते भारतीय समाज में ऊँच-नीच, शासित व वंचित वर्ग तथा द्वेष व विद्वेष जैसी भावना का विस्तार हुआ।

वंचितों और अधिकार विहीनों के लिए एक संपूर्ण समाज का आवह्नान

भीमराव अंबेडकर भारत के सभी वर्ग-वर्ण के सदस्यों को मिलाकर एक ऐसे भारतीय समाज बनाना चाहते थे जिसमें सब मिलकर उन्नति की राह पर अग्रसर हो सकें। उनके लिए वंचित सभी एक जैसे थे– चाहे वे किसी भी वर्ग जाति या वर्ण के रहे हों। वे सभी तरह के वंचितों को उनके अधिकार दिलाना चाहते रहे। उन्होंने कभी

भी सिर्फ ऊँच या निम्न वर्ग के लिए ही काम करना नहीं चाहा वरन् समाज के सभी तरह के वंचितों एवं अधिकारविहीनों की भलाई के लिए काम किया। उन्होंने समाज के सभी शोषितों के हित में काम किया और उनके विकास के लिए प्रयास करते हुए कहा, ''मजदूरों का शोषण कम-से-कम हो। उनके वेतन पर सरकारी नियंत्रण हो। उन्हें उनकी छूट्टी, काम की अवधि, सवेतन छुट्टी, वोनस व पेंशन आदि देने की भी कानूनी व्यवस्था हो''।[15] इस प्रकार, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक-धार्मिक सुधार की वकालत करते हुए समाज परिवर्तन का आव्हान किया और भारतीय समाज के दबे–कुचले व नकारे लोगों के आत्म सम्मान और अधिकार के लिए जीवनपर्यंत संघर्ष करते हुए एक ऐसे समाज निर्माण की वकालत की जिसमें सबके लिए समता व स्वतंत्रता का स्थान हो। उन्होंने दलितों के उत्थान के लिए हरसंभव प्रयास करते हुए उन्हें जगाने, शिक्षित करने एवं सामाजिक-सांस्कृतिक न्याय दिलाने के लिए संकल्प लिया। उन्होंने दलित आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए कई कार्य किए जिनमें मराठी पाक्षिक पत्रिका, 'मूक नायक' का 21 जनवरी 1920 से प्रकाशन किया।

मूल्यांकन

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि आधुनिक भारत के क्रांति दूतों एवं मानवतावादियों में डॉ. भीमराव अंबेडकर का एक ऐसा स्थान है जिन्होंने दलितों को एक सम्मानजनक स्थान दिलाने, सामाजिक-धार्मिक बुराईयों व रूढ़िवादिता को समाप्त करने तथा समता एवं स्वतंत्रता जैसे विचारों का प्रचार-प्रसार करने में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। उनका मानना था कि आदर्श सामाजिक व्यवस्था स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित होना चाहिए। उनका यह विश्वास था कि यदि हम सामाजिक जीवन में लोकतंत्र की स्थापना नहीं कर पाते तो राजनीतिक जीवन में लोकतंत्र ज्यादा दिनों तक टिक नहीं सकता। यहाँ हम अंबेडकर के सामाजिक न्याय के विचार की तुलना ब्रिटिश विचारक हैरोल्ड जे लॉस्की से करें तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है। लॉस्की का भी विचार था कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के अभाव में राजनीतिक लोकतंत्र मृग-मरीचिका मात्र है। लॉस्की की तरह ही अंबेडकर का भी मानना था कि मनुष्यों में समानता सिर्फ राजनीतिक समानता से सार्थक नहीं हो सकती। जबतक सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना नहीं हो जाती तबतक समानता अधूरी है। भारतीय संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते समय उन्होंने संविधान सभा में कहा था, ''इस संविधान को अपनाकर हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। इससे राजनीतिक जीवन में तो समानता प्राप्त हो जाएगी, परंतु सामाजिक और आर्थिक विषमता बनी रहेगी। राजनीति के क्षेत्र में तो हम *'एक व्यक्ति, एक वोट, एक मूल्य'* के सिद्धांत को मान्यता प्रदान कर देंगे, परंतु हमारा सामाजिक और आर्थिक ढाँचा इस ढंग से नहीं बदल जाएगा जिससे *'एक व्यक्ति, एक मूल्य'* के सिद्धांत को सार्थक किया जा सके''। दूसरे शब्दों में समानता का सिद्धांत

सच्चे अर्थों में तभी सार्थक होगा जब मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति की समान नैतिक मूल्य को साकार किया जा सके''। उन्होंने इस स्थिति पर चिंता प्रकट करते हुए यह प्रश्न उठाया था, ''हम कब तक विरोधाभासों से भरा जीवन जीते रहेंगे? हम कब तक सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को अपनाने से इनकार करते रहेंगे''? उन्होंने शासन की संस्थाओं में दलित वर्गों के उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व पर बल देते हुए यह विश्वास व्यक्त किया कि इससे दलित वर्गों का कानूनी तरीके से शिकायत निवारण का अवसर मिलेगा। हिंदू समाज व्यवस्था में आमूल–परिवर्तन लाने के ध्येय से उन्होंने जाति प्रथा के पूर्ण उन्मूलन की योजना प्रस्तुत की और हिंदू धर्म के सुधार पर बल देते हुए 'औपचारिक धर्म' (formal religion) के स्थान पर 'सच्चा धर्म' (true religion) स्थापित करने का सुझाव दिया। 'नियमों पर आधारित धर्म' के स्थान पर 'सिद्धांतों पर आधारित धर्म' को मान्यता देने का उन्होंने प्रस्ताव रखा। उनकी मान्यता थी कि नई सामाजिक व्यवस्था के निर्मित होने पर विभिन्न संस्कारों को संपन्न करने के लिए ब्राह्मणों के स्थान पर किसी भी जाति से संबंध रखने वाले प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को लगाया जाएगा और वे कार्य अपनी राज्य की निगरानी में करेंगे। इस प्रकार, अन्य जातियों के कार्य को भी समाज के भिन्न–भिन्न व्यक्ति अपनी योग्यता और प्रशिक्षण के आधार पर संभालेंगे। अर्थात डॉ. अंबेडकर ने सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए जाति प्रथा के स्थान पर एक नया तर्क संगत और कृत्यात्मक सामाजिक संगठन (rational and functional social organisation) की स्थापना पर बल दिया। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए हरसंभव प्रयास किया। उनका यह विचार सही है कि किसी भी उत्पीड़ित समूह को अपने अंदर से नेतृत्व पैदा करनी चाहिए– किसी अन्य समूह की सहानुभूति और नेतृत्व के सहारे उसे अपने उत्थान की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। उनका उत्पीड़ित समूह के प्रति इस तरह का विचार एकपक्षीय है, क्योंकि, जब किसी अन्य समूह से संबंध रखने वाला समाज सुधारक इस समूह की उत्थान की ओर अग्रसर हो तो उसे सदैव संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। अंबेडकर का यह मानना कि 19वीं शताब्दी के ध ार्मिक–सामाजिक सुधारकों ने सिर्फ सतही स्तर पर सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में सुधार लाने का प्रयास किया, स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनका यह कहना कि इन धार्मिक–सामाजिक सुधारकों ने सभी बुराईयों की जड़ जाति व्यवस्था पर कोई प्रहार नहीं किया, उनकी विस्तृत सोच के दायरे को सीमित करता है। यह सही है कि 19वीं शताब्दी के अनेक धार्मिक–सामाजिक सुधारकों ने इस समूह के उत्थान के लिए भरपूर प्रयास किया है जिसे नकारा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती (1824–83), स्वामी विवेकानंद (1853–1902) और महात्मा गाँधी (1869–1948) आजीवन निम्न और दलितों के उत्थान के लिए जो प्रयत्न किए, उन्हें निरर्थक मानकर हम परे नहीं रख सकते। महात्मा गाँधी का विचार था कि सवर्ण हिंदुओं का हृदय

परिवर्तन करके छुआछूत की प्रथा मिटाई जा सकती है। डॉ. अंबेडकर का महात्मा गाँधी के इस विचार से असमत होना उनकी सोच को सीमित करता है। गाँधीजी ने श्रम की गरिमा पर बल देने के लिए अस्पृश्य जाति के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग सुझाया जिसे अंबेडकर ने नकारते हुए तर्क दिया कि टूटे–फूटे मकान की रंगाई–पुताई करके उसकी दुर्दशा को छिपा तो सकते हैं, सुधार नहीं सकते। ऐसी हालत में उसे गिराकर नया मकान बनाना ही उपयुक्त होगा।[16]

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय से संबंधित डॉ. अंबेडकर के उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि डॉ. अंबेडकर ने तत्कालीन भारतीय समाज को बहुत करीब से देखा और परखा। वे पद दलित लोगों और सामाजिक एकता के प्रति समर्पित एक विद्रोही नेता और मानव मुक्ति के एक सशक्त योद्धा थे। सामाजिक न्याय की उनकी अवधारणा अधिक व्यापक एवं बोधगम्य है जिसमें व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन के सभी पक्ष समाहित हैं। उनके सामाजिक न्याय में तीन प्रकार के संदेश दिए गए हैं– सामाजिक संदेश, आध्यात्मिक संदेश व शैक्षणिक संदेश। सामाजिक संदेश में समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व जैसे प्रमुख सिद्धांत सम्मिलित हैं। डॉ. अंबेडकर चाहते थे कि विवेकपूर्ण एवं न्यायोचित समाज का आधार समता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व एवं न्याय हो। इस संदेश में बुद्ध–धम्म और संघ का त्रयी सिद्धांत उनके जीवन दर्शन की आधारशिला है। उनका शैक्षणिक संदेश जैसे *शिक्षित बनो, संघर्ष करो तथा संगठित हो,* एक ऐसी जीवन पद्धति है जिसके द्वारा समाज का शनैः–शनैः पुनर्निमाण का विकास किया जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि डॉ. अंबेडकर ने जाति प्रथा पर प्रहार कर सामाजिक समरसता एवं भाईचारे का मार्ग प्रशस्त किया। सदियों पुरानी निरर्थक एवं विभाजनकारी मान्यताओं पर प्रहार करते हुए उन्होंने कठिन परिश्रम एवं संघर्ष से जनमानस को जागृत किया जो सामाजिक उत्थान और विकास की दिशा में उनका समाज को सबसे बड़ा योगदान है। उनका यह विचार आज अनुकरणीय है कि न्यायपूर्ण समाज में परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर यदि एक करूणा भरे समाज का निर्माण करे तो समाज का सर्वांगीण विकास संभव है और यही उनके सामाजिक न्याय का दर्शन है।

संदर्भ ग्रंथ

1. https://m.facebook.com>permalink
2. Quoted by Dr. Gandhijee Roy ; *Rajnitishastra ke Mool Siddhant* (Patna, Bharati Bhawan, 2018), pp. 79-80
3. ओम प्रकाश गाबा : *भारतीय राजनीतिक–विचारक* (इंदिरापुरम, मयूर पेपरबैक्स, 2017), पृ. 233

4. बी. एम. शर्मा, राम कृष्ण दत्त शर्मा, सविता शर्मा : *भारतीय राजनीतिक विचारक* (जयपुर, दिल्ली, रावत पब्लिकेशन, 2005), पृ. 372
5. उपरोक्त
6. प्रो. ज्योति प्रसाद सूद : भारतीय राजनीतिक विचारक (मेरठ, के. नाथ एण्ड कंपनी, 2011–2012), पृ. 208
7. उपरोक्त
8. ओम प्रकाश गाबा, पूर्वोक्त, पृ. 234
9. प्रो. ज्योति प्रसाद सूद : पूर्वोक्त, पृ. 208
10. ''डॉ. अंबेडकर अंतर्जातीय–विवाह के पक्षधर थे और इसी कारण उन्होंने अपना विवाह एक ब्राह्मण युवती सविता कबीर से किया''– प्रो. ज्योति प्रसाद सूद : पूर्वोक्त, पृ. 208
11. डॉ. अंबेडकर, *लाइफ एण्ड मिशन*, पृ. 487
12. ओम प्रकाश गाबा, पूर्वोक्त, पृ. 237–238
13. उपरोक्त, पृ. 238
14. डॉ. सुनील कुमार प्रियबच्चन द्वारा अपने आलेख में उद्धृत : बाबा साहेब के सामाजिक न्याय की झलक, प्रतियोगिता दर्पण (सितंबर 2017), पृ. 104
15. उपरोक्त
16. ओम प्रकाश गाबा, पूर्वोक्त, पृ. 240

पर्यावरण प्रदूषणः एक वैश्विक चुनौती

प्रतिभा तिवारी एवं अवनीन्द्र कुमार तिवारी

Ikjk'k% पर्यावरण प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती है, क्योंकि पेंटागन की एक रिपोर्ट में 2004 में ही चेतावनी दी गयी थी कि इससे जान-माल दोनों के नुकसान होने की सम्भावना है। एन्ड्रयू मार्शल द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में कहा गया था कि वातावरण में अचानक आने वाले परिवर्तनों से पूरे विश्व में अफरा-तफरी मच सकती है। रिपोर्ट के प्रमुख लेखकों डा0 रेडाल व पीटर स्क्वार्ट्ज़ ने आगाह किया था कि इन बदलावों पर तत्काल प्रभाव से विचार नहीं किया गया तो विश्व के देशों के बीच पेयजल और बिजली की कमी से संघर्षों एवं युद्धों का सिलसिला भी प्रारम्भ हो सकता है। लेखकों का मानना है कि ऐसा कभी भी किसी भी समय शुरू हो सकता है।

प्रस्तावना

उपर्युक्त रिपोर्ट के अलावा पर्यावरण से संबंधित अन्य मुद्दे भी विचारणीय हैः

1. विश्व के कृषि योग्य भूमि में अब कोई वृद्धि नहीं हो रही है। उपजाऊ भूमि के एक बड़े भाग की उर्वरता कम हो रही है। चारागहों के चारे समाप्त हो रहे हैं। जलाशयों की जलराशि बड़ी तेजी से घट रही है।
2. संयुक्त राष्ट्र के विश्व विकास प्रतिवेदन (2006) के अनुसार विश्व के विकासशील देशों के एक अरब करोड़ लोगों के पीने के लिए साफ पानी उपलब्ध नहीं होता। 2018 की रिपोर्ट में चेतावनी दी गयी है कि पानी की किल्लत झेल रहे लोगों की संख्या 2050 तक 57 अरब तक पहुंच जायेगी।[1]
3. वन, जलवायु एवं जल चक्र को संतुलित रखने में सहयोग करते हैं। वनों की हर रोज कटाई से लाखों लोग विस्थापित हो रहे हैं।
4. भूमि के ऊपरी वायुमण्डल में ओज़ोन परत में छेद हो जाने के कारण

पारिस्थितिक तंत्र के साथ-साथ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी खतरा मण्डरा रहा है।

5. समुद्र तटीय इलाकों मे बढ़ रही लोगों की सघन आबादी से समुद्री पर्यावरण की गुणवत्ता के काफी गिरावट आ रही है।
6. 19वीं सदी में धरती का औसत तापमान लगभग 0.1 डिग्री की तुलना में 20वीं सदी में लगभग 0.7 डिग्री बढ़ चुका है। वर्ष 2100 तक धरती का औसत तापमान लगभग दो से छह तक बढ़ सकता है।[2]

अन्टाकर्टिका की पिघलती बर्फ इंसानी वजूद के लिए खतरे की घण्टी

अन्टाकर्टिका के पानी के अन्दर ही बर्फ पिघलने की दर प्रत्येक 20 वर्ष में दोगुनी हो रही है। नेचर जियो साइंस में प्रकाशित एक अध्ययन रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने बताया है कि समुद्री जल का तापमान बढ़ने के चलते वर्ष 2010 से 2016 तक के बीच दक्षिणी ध्रुव के निकट बर्फ की सतह प्रभावित होने से इस क्षेत्र में करीब 1463 वर्ग कि0मी0 बर्फ का आधार सिकुड़ गया है।

प्रो0 एन्ड्रयू शेफर्ड का कहना है कि अन्टाकर्टिका में आधारतल पिघल रहा है। हम इसे देख नहीं सकते क्योंकि यह समुद्र की सतह से काफी भीतर हो रहा है। इस अध्ययन में करीब 16000 किमी0 समुद्र तट को शामिल किया गया है। यूरोपीय स्पेस एजेंसी के क्रायोसेट–2 से प्राप्त आंकड़ों द्वारा आर्कमिडीज़ के सिद्धान्त के आधार पर बताया गया है कि इस तरह बर्फ पिघलने से समुद्र स्तर में बड़ा बदलाव होने ही आशंका है। इनमें सबसे अधिक गिरावट पश्चिम अन्टाकर्टिका में देखी गयी है। जहाँ मौजूदा 65 ग्लेशियरों में आठ के पिघलने की दर बीते आखिरी हिम युग के बाद पाँच गुना अधिक तेजी से बढ़ी है।[3]

भारत पर ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव

भारत में ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव स्पष्ट नजर आने लगा है। वर्ष 2015 मे हुई बेमौसम वर्षा, बर्फबारी एवं अनेक संक्रामक बीमारियों ने मौसम वैज्ञानिकों को चिंतित कर दिया है। 2015 में उत्तरी और मध्य भारत में मौसम का मिजाज तमाम पूर्वानुमानों के विपरीत एक नई दिशा में जा रहा है। इसके चलने कहीं बेमौसम बरसात हो रही है तो कहीं भारी बर्फबारी। उदाहरण के तौर पर बेमौसम बरसात और बर्फबारी से खड़ी फसले तबाह हो रही हैं।[4] ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव भारत के सुन्दरवन क्षेत्र में बहुत पहले ही दिखायी देने लगा था। इसने सुन्दर वन के मैंग्रोव वनों पर भी अपना प्रभाव डाला है। इसके चलते बंगाल की खाड़ी का जलस्तर बढ़ने लगा है, जिसके कारण इस क्षेत्र के कई द्वीप जल समाधि ले चुके

हैं और अन्य दूसरे क्षेत्रों पर भी इसका खतरा मण्डराने से पर्यावरण शरणार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है। बदलते मौसम की इस प्रवृत्ति ने देश की कृषि अर्थव्यवस्था को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। इससे सिर्फ फसल और फसल चक्र के ही नुकसान होने का खतरा नहीं है, बल्कि इसका दूरगामी प्रभाव सम्पत्ति के नुकसान के रूप में भी पड़ेगा।

सर्दी में गर्मी, गर्मी में बरसात, एक ही दिन में महीनों सालों की बरसात, सर्दी में अधिक सर्दी, गर्मी में अधिक गर्मी, सूखाग्रस्त इलाकों में बाढ़ या सामान्य स्थितियों में अत्यधिक कम या ज्यादा तापमान हो जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि न सिर्फ मौसम बदल रही है बल्कि हम मौसम की अतिवादी स्थितियों से घिरते जा रहे है। मौसम विज्ञानी इसे ग्लोबल वार्मिंग की नतीजा मान रहे हैं। इसी वजह से धरती का तापमान बढ़ रहा है और ग्लेशियर पिघल रहे हैं। इसी कारण समुद्र का जल स्तर उठ रहा है। कुल मिलाकर मौसम और जलवायु का चक्र बदलाव के दौर से गुजर रहा है और दुनिया भर के लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इसका खामियाजा भुगत रहे हैं।

मौसम का यह बदलाव आज दुनिया के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक हैं। इस चुनौती से निपटने के लिए 171 देशों ने मिलकर पेरिस जलवायु समझौते पर हस्ताक्षर किया ताकि मौसमी बदलाव के कहर से किसी हद तक बचा जा सके। इस समझौते का सबसे बड़ा और जटिल लक्ष्य यही है कि ग्रीन हाउस गैसों और उन मानवीय गतिविधियों पर नियंत्रण किया जाए, जिनसे धरती का तापमान बढ़ रहा है और मौसम बदल रहा है। संयुक्त राष्ट्र आईपीसीसी की रिपोर्ट भी इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ती कि जो ग्लोबल वार्मिंग हो रही है, वह इसांनों की वजह से हो रही है और उसके खतरनाक नतीजे होंगे और विश्व भर में तापमान बढ़ने की प्रक्रिया को उलटना संभव नहीं है। रिपोर्ट यह भी साफ करती है कि पृथ्वी के गर्म होने को दो डिग्री से कम रखने के लिये जहरीली गैसों के उत्सर्जन को बहुत जल्द काफी कम करना होगा। जलवायु परिवर्तन में मौसम में भारी उतार चढ़ाव समुद्र के जल स्तर में वृद्धि तपती गर्मी के दिनों में बढ़ोतरी, बाढ़ और सूखे जैसे परिणाम होते हैं।

जलवायु परिवर्तन हिसंक विवादों और शरणर्थी समस्याओं की ओर ले जा सकता है और इसका खाद्य सामग्रियों के उत्पादन पर नकारात्मक असर होगा। इसके एक और खतरनाक नतीजे की ओर ध्यान दिया गया है और वह भी समुद्र का बढ़ता अम्लीकरण, जिसे ज्यादा कार्बन डाइआक्साइड सोखना पड़ रहा है। यह समुद्री जीवन के लिए बहुत बड़ा खतरा है। रिपोर्ट में बताया गया है कि अगर ग्रीन हाउस गैसों में कमी नहीं होती है तो 21वीं सदी के अन्त तक मौसम के बदलाव के जोखिम बहुत ज्यादा होंगे।

यदि कुछ नहीं किया गया तो सदी के अन्त तक पृथ्वी का तापमान करीब चार डिग्री सेल्सियस बढ़ जायेगा। कुछ अध्ययनों में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन से उत्पादन में वृद्धि की जगह पर फसलों के उत्पादन में कमी आयेगी। यह कमी विभिन्न फसलों में इस प्रकार हो– मक्का 20–45 प्रतिशत, गेहूँ 5–50 प्रतिशत, धान 20–30 प्रतिशत, सोयाबीन 30–60 प्रतिशत। अनाज के उत्पादन में यह कमी मंहगाई एवं भुखमरी को बढ़ाने वाली साबित होगी। इसलिए मौसम के बदलाव को गम्भीरता से समझना होगा।[5]

मौसम का हमारी सेहत पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। यदि जलवायु गर्म हो जाए तब स्वास्थ्य की समस्याएँ बढ़ेगीं। यह महसूस किया जा रहा है कि गर्म हवाओं के तेज होने और उनकी प्रचण्डता से तथा दूसरी मौसमी घटनाओं से मृत्युदर में वृद्धि होगी। वृद्ध, बच्चे और व लोग जो श्वसन एवं हृदय रोग से पीड़ित हैं, उन पर संभवतः ऐसे मौसम का ज्यादा असर होगा, क्योंकि उनमें सहने की क्षमता कम है। तापमान में वृद्धि का असर नगर में रहने वाले लोगों पर गाँव में रहने वालों की अपेक्षा ज्यादा पड़ेगा। यह उष्मादीप के कारण होता है, क्योंकि वहाँ के कण एव तारकोल से बनी सड़के हैं। नगरों में अधिक तापमान के कारण ओज़ोन के धरातलीय स्तर में वृद्धि होगी, जिससे वायु प्रदूषण जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं और बढ़ेगी।

अप्रत्यक्ष रूप से मौसम के रूप में परिवर्तन पारिस्थितिक गड़बड़ी पैदा कर सकती है। भोज्य पदार्थों के उत्पादन के स्तर में खतरा अधिक होगा। उच्च तापमान के कारण समुद्री स्तर ऊपर उठेगा जिससे भू-क्षरण होगा तथा महत्वपूर्ण परिस्थितिक तंत्र जैसे बरसाती भूमि और प्रवाल भित्ति को क्षति पहुंचेगा। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव प्रचण्ड बाढ़ के कारण मृत्यु और चोट के रूप में आ सकता है। तापमान बढ़ने का अप्रत्यक्ष नतीजा भूमिगत जलतंत्र परिवर्तन के रूप में होगा। साथ ही तटीय रेखा जैसे खारे जल का भूमिगत जल तथा बरसाती भूमि में जाने से प्रवास भित्ति में क्षय तथा निचले प्रदेशों में अपवहन तंत्र को नुकसान होगा। जलवायु प्रदूषण के कारण वायु प्रदूषण का स्तर बढ़ेगा, जिससे वायुमण्डलीय रासायनिक प्रतिक्रिया तेज हो जायेगी।

हरित गृह गैस (ग्रीन हाउस गैस) प्रभाव के कारण ही समताप मण्डलीय ओज़ोन पर का क्षय हो रहा है, जो सूर्य के हानिकारक किरणों से पृथ्वी की रक्षा करती है। समताप मण्डलीय ओज़ोन के क्षय से सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणें बड़ी मात्रा में पृथ्वी पर पहुंचती हैं, जिससे श्वेतवर्णी लोगों में त्वचा कैंसर जैसी बीमारियां पैदा होती हैं। इसके वजह से बहुत सारे लोग मोतियाबिंद जैसी आंख की बीमारियों से पीड़ित होंगे। ऐसा अनुमान है कि यह प्रतिरक्षा तंत्र (बीमारियों से रक्षा करने वाले तंत्र) को भी समाप्त कर सकता है। विश्व में गर्मी बढ़ने के कारण उन क्षेत्रों में वृद्धि

होगी जहां बीमारियां फैलाने वाले कीड़े जैसे– मच्छर आदि उत्पन्न होंगे, जिससे संक्रमण तेजी से फैलेगा।

ग्लोबल वार्मिंग के लिए मुख्यतः कार्बन डाइआक्साइड, मिथेन, नाइट्रस आक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन और हैलोन जैसी गैसें उत्तरदायी हैं। इन गैसों का सान्द्रण वायुमण्डल में निरंतर बढ़ता जा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण 21वीं सदी के अन्त में समुद्री जलस्तर में 18 से 58 सेमी. तक की वृद्धि की आशंका है। इससे मालद्वीप जैसे निम्न समुद्र तटीय भाग जल निमग्न हो जायेंगे, जिनसे आज की 25 प्रतिशत यानी एक अरब जनसंख्या बेघर हो जायेगी। समुद्री खारे पानी के ऊपर आ जाने से पेय जल का संकट उत्पन्न हो जायेगा।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण भारत का तटीय क्षेत्र प्रभावित होगा, जो अत्यन्त उपजाऊ तथा सघन जनसंख्या वाला क्षेत्र है। उत्तर भारत में गेहूँ की प्रधानता वाले परिक्षेत्र की स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रो0 डेविड बी0 लावेल एव ऐडम सीबली व अन्तर्राष्ट्रीय मक्का गेहूँ उन्नयन केन्द्र के जे0 इवान आर्टिज मोनेसटोरियो द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार तापमान में एक डिग्री की अधिकता गेहूँ की फसल को 10 प्रतिशत तक प्रभावित कर देती है। वहीं विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी मानना है कि जलवायु परिवर्तन का न केवल हमारे स्वास्थ्य पर असर पड़ेगा, बल्कि गरीब देशों के प्रमुख खाद्यान्नों में कमी आयेगी, जिससे कुपोषण बढ़ेगा। वर्ष 2050 तक भारत में सूखे से गेहूँ के उत्पादन में 50 प्रतिशत की कमी की आशंका जताई जा रही है। आईपीसीसी की 2007 की रिपोर्ट के अनुसार 2080 तक एक अरब 10 करोड़ लोगों को अनाज उपलब्ध नहीं होगा।

पर्यावरण अंसतुलन के कारण ओज़ोन परत के क्षीण होने तथा उसमें छेद होने की समस्या आयी है। ओज़ोन आक्सीजन का ही एक रूप है, जिसमें दो की जगह तीन अणु होते हैं। यदि यह परत नष्ट हो जाए या कमजोर पड़ जाए तो पराबैंगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर पहुंचती हैं, जो न केवल जीव जन्तुओं के लिए अपितु वनस्पतियों के लिए भी हानिकारक होती हैं। ओज़ोन परत की क्षरण के मानवीय गतिविधियाँ की जिम्मेदार हैं। भौतिक रूप से जीवन को सुखी बनाने के लिए तथा विलासिता के साधन सृजित करने के चक्कर में उन रसाायनों का प्रयोग किया जा रहा है, जो ओज़ोन परत को क्षति पहुंचाते हैं। ओज़ोन क्षरण से ओज़ोन के अणु पृथ्वी के निचले वायुमण्डल में प्रविष्ट कर जाते हैं, जिससे वायु श्वास लेने हेतु जहरीली हो जाती है। आज पर्यावरण की स्थिति बदल गयी है। उसके लिए छेड़-छाड़ असहाय हो गयी है। पिछले दो दशकों में दुनिया भर में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं में चार गुना वृद्धि हुई है। अब पृथ्वी को सूनामी, ज्वालामुखी विस्फोट तथा भूस्खलन से जोड़ कर देखा जा रहा है।

पर्यावरण अंसतुलन के कारण जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है।

पृथ्वी पर कार्बन डाइआक्साइड एवं हरित गैसों के निरन्तर बढ़ते प्रयोग के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि देखी गयी है। इस घटना को वैश्विक तापन कहते हैं। यद्यपि वायुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा केवल 0.03 है, जिसे मौसम की चाबी या कुंजी कहा जाता है। जलवायु परिवर्तन पर गठित अन्तर सरकारी पैनल ने वैश्विक तापमान के बढ़ते खतरे की ओर ध्यान दिलाते हुए अपनी एक रिपोर्ट में बताया है कि यदि तापमान में वृद्धि जारी रही तो वर्ष 2100 तक पृथ्वी की सतह का तापमान 1.4 से 5.8 सेल्सियस तक बढ़ जायेगा। बताया जाता है कि यह तापमान उससे भी अधिक होगा, जितना की पिछले 10,000 वर्षों में हुआ है। भूमण्डलीय तापमान बढ़ने का मुख्य कारण है– जीवाष्म ईंधनों का अतिशय प्रयोग, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, ओज़ोन मण्डल में छेद हो जाने की वजह से सूर्य की पैराबैंगनी किरणों का धरातल पर पहुंचना तथा अति औद्योगीकरण, जलवायु परिवर्तन के कारण मानव जीवन एवं सम्पूर्ण परितंत्र पर अत्यन्त नकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे हैं। यथा जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव तापमान, वर्षण एवं ऋतु चक्र पर पड़ता है। इसका सीधा प्रभाव मृदा आर्द्रता, जीवाणुओं की उत्पत्ति एवं प्रजनन, पौधों की वृद्धि, पुष्पन एवं फलधारण पर पड़ता है। बाढ़, सूखा, सूनामी जैसी आपदाओं में तीव्रगति से वृद्धि देखी जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्तमान में विशेष समुद्रतटीय क्षेत्रों के अस्तित्व पर खतरा मण्डराने लगा है।

पर्यावरण और परितंत्र पर भी जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को जैव विविधता पर मंडराते संकट के रूप में देखा जा सकता है। इसके कारण अनेक प्रकार के पौधें एवं जीव जन्तुओं की प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी हैं तथा इससे भी अधिक विलुप्त होने के कगार पर हैं। जलवायु परिवर्तन से हुए वैश्विक तापमान ने मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दक्षिण पूर्व एशिया परिक्षेत्र में एक करोड़ 40 लाख लोगों के मौत का कारण जलवायु परिवर्तन बनेगा। जिसमें 40 प्रतिशत मौतों के लिए संक्रामक बीमारियां जिम्मेदार होंगी। आज जलवायु परिवर्तन से ही कैंसर, मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, पीत ज्वर, चर्मरोग समेत अनेक संक्रामक रोग फैल रहे हैं। जलवायु परिवर्तन एवं पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के लिए मानवीय गतिविधियां सर्वाधिक जिम्मेदार हैं।

समुद्री जल स्तर बढ़ने का खतरा

अमेरिका के पर्यावरण सुरक्षा एजेन्सी का आकलन है कि सौ सालों में समुद्री जल स्तर छह–आठ इंच (15 सेमी0 से 20 सेमी0) बढ़ा है। अंटाकर्टिका के पाइन आइलैण्ड के इलाके के दो ग्लेशियर यदि पिघल जायेंगे तो दुनिया के समुद्रों का जलस्तर 11 फीट तक उठ सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि समुद्र के किनारे बसे धरती के सब शहर डूब जायेंगे। ये ग्लेशियर कब तक पिघलेंगे, समय के सबसे बड़े सवालों में एक है। इसका आकलन लगाने के लिए वैज्ञानिक 11

हजार साल पूर्व के अन्तिम हिमयुग के अध्ययन में लगे हैं। अब तक के सबूत इंगित करते हैं कि उस समय पाइनन आइलैंड के ग्लेशियर बहुत तेजी से टूटे थे, और विश्वभर के तटीय इलाकों में बाढ़ आयी थी। अंटाकर्टिका के इस हिस्से के केन्द्र की ओर सामुद्रिक सतह गहरी होती जा रही है। इसके चलते जब भी कोई नया आइसबर्ग टूटता है तब टूटने की खाई बड़ी होती है। बर्फ के भार को सहना इन खाईयों के लिए असंभव हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि टूटने की प्रक्रिया तेज हो जाती है तो इसे रोका नहीं जा सकता। वैज्ञानिक इसी प्रक्रिया की गति का अनुमान लगाने की कोशिश में जुटे हैं। वैज्ञानिकों के विचार में टाटेन ग्लेशियर अंटाकर्टिका में सबसे तेज तैरने वाला और सबसे बड़ा ग्लेशियर है। नासा की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2002 से 2016 के बीच अंटाकर्टिका में प्रतिवर्ष 125 गीगाटन बर्फ पिघलती है। इसके परिणामस्वरूप दुनिया भर में समुद्री स्तर सालाना 0.35 मिलीमीटर बढ़ गया है। उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से सभी वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि वैश्विक तापन के चलते दोनों ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। 2016 में नासा के वैज्ञानिक पियर्स सेलर्स ने ग्रीनलैंड का दौरा कर जो कुछ देखा वह भविष्य के लिए बड़े खतरे का संकेत है। ग्रीनलैंड में प्रतिवर्ष करीब 287 बीलियन मीट्रिक टन बर्फ पिघल रही है।

पृथ्वी के अस्तित्व पर मंडराता खतरा

संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन पर अन्तर सरकारी पैनल– आईपीसीसी द्वारा 309 वैज्ञानिकों की समिति ने 2014 में जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन आज व्यापक रूप ले चुका है और इसके नतीजे दिखने लगे हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम सचेत नहीं हुए तो प्रकृति हमें दूसरा अवसर नहीं देने वाली है। वैश्विक तापमान का प्रभाव विकसित तथा विकासशील सभी राष्ट्रों पर समान रूप से पड़ता है। लेकिन इसका सर्वाधिक कहर विकासशील देशों को अधिक झेलना पड़ता है। क्योंकि संसाधनों की कमी के चलने ग्लोबल वार्मिंग के अतिवृष्टि और अनावृष्टि के थपेड़ों को सहन करने की शक्ति उनमें नहीं होता।

मौजूदा सदी की शुरूआत तक माना जाता था कि 550 पीपीएम कार्बन डाइआक्साइड वायुमण्डल का तापमान दो डिग्री सेल्सियस तक बढ़ा देगा, जिससे धरती पर विनाशकारी प्राकृतिक घटनाओं को न रोकी जा सकने वाली एक श्रृंखला शुरू हो जायेगी। 2013 से 14 के बीच इसमें 19 पीपीएम की बढ़ोतरी दर्ज की गयी थी, जो वर्ष 1990 के दशक की 1.5 पीपीएम औसत वृद्धि से अधिक और पिछले दशक की 2.2 पीपीएम औसत वृद्धि से थोड़ी कम है, लेकिन यह वृद्धि पाँच डिग्री सेल्सियस की ओर उन्मुख है। तापमान का यह अंतर भले ही छोटा लगे लेकिन पिछले हिमयुग और आज के तापमान में मात्र पाँच डिग्री सेल्सियस का यह अन्तर है। नासा के एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने चेतावनी दी है कि यदि ठोस कदम नहीं उठाये गये तो पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के कारण हम भुनकर टोस्ट बन जायेंगे।

गाडर्ड इन्स्टीट्यूट आफ स्पेस साइंसेज के निदेशक जेम्स हेंसल का कहना है कि दुनियाभर के वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों के चलते तापमान काफी समय पहले खतरनाक स्तर पार कर चुका है। दुनिया को अब 1988 के पहले के स्तर पर लौटने की जरूरत है। यदि यही सिलसिला रहा तो जलवायु मॉडल के अनुसार कार्बन डाइआक्साइड का उत्सर्जन 2100 में 1990 में उत्सर्जित सात बिलियन की जगह 20 बिलियन टन हो जायेगा। इसके साथ ही नई नीतियों के अभाव में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा 2030 तक औद्योगीकरण के पूर्व स्तर से दो गुना हो जायेगी।[6]

संदर्भ सूची

1. संयुक्त राष्ट्र का विश्व विकास प्रतिवेदन, 2018
2. प्रोफेसर एन्ड्रयू शफर्ड
3. गाँधी जी राय, लोक प्रशासन, जुलाई–दिसम्बर 2018, पृ0 48
4. दैनिक भाष्कर, पटना 08 अप्रैल 2018, पृ0 1
5. प्रथम प्रवक्ता, 1 जून 2016, पृ0 20
6. गाँधी जी राय, लोक प्रशासन, जुलाई–दिसम्बर 2018, पृ0 47–49

भारतीय लोकतंत्र पर कोविड-19 महामारी का प्रभाव

पूजा गुप्ता एवं निलांजना जैन

lkjk'k *दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत, जहाँ चुनाव उत्सव की तरह है। इसकी अपनी वैश्विक प्रतिष्ठा है। हमारा निर्वाचन आयोग कई विकासशील एवं अल्प-विकसित देशों में होने वाले चुनावों के संचालन में सहयोग देता है। 26 नवंबर 2020 को संविधान दिवस के 74 वर्ष पूरे हो गए। आजादी के इतने वर्षो के बाद भी हमारा भारतीय संविधान अक्षुण्ण, जीवंत और सतत् क्रियाशील बना हुआ है। इन गुणों का प्रभावी बने रहने के लिए सबसे जरूरी है, जनमानस की आस्था। हाल के कुछ वर्षो में भारतीय राजनैतिक व्यवस्था ने सत्ता में बदलाव से लेकर कानूनों में बदलाव तक कई बड़े उतार-चढ़ाव देखे। वर्तमान में विश्व कोविड-19 नामक महामारी की चपेट में है, जिससे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व मानसिक हर स्तर प्रभावित हुआ है। इसका बहुत व्यापक प्रभाव लोकतान्त्रिक देशों में देखने को मिला। जहाँ इस संकट के बीच देश पहली बार लोकतंत्र की गारंटी व व्यक्तिगत अधिकारों को निलंबित करने पर मजबूर हुए। वैश्विक स्तर पर जनता की सुरक्षा के लिए सरकारों को उन मूल्यों का अस्थायी तौर पर त्याग करना पड़ा है, जिन पर वे खड़े थे। विचार करने वाली बात यह है, कि कहीं लोकतंत्र की यह मंदी इसे परिखेद की ओर न धकेल दे।*

प्रस्तावना

भारतीय लोकतंत्र को विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का दर्जा प्राप्त है। भारतीय लोकतंत्र ने कई उतार-चढाव देखे हैं। अस्थिर सरकारें, आपातकाल और तीन बड़े महत्वपूर्ण युद्धों को झेला है। आजादी के बाद के सफर में भारत का लोकतंत्र कितना सफल रहा या नहीं यह देखने के लिये वर्षों का इतिहास, देश की उपलब्धियाँ, देश का विकास, सामाजिक-आर्थिक दशा, लोगों की खुशहाली आदि पर गौर करने की जरूरत है। भारत का लोकतंत्र बहुलतावादी राष्ट्रीयता की कल्पना पर आधारित

है। दक्षिण एशिया को देखे तो, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान और श्री लंका में उनके विशिष्ट धार्मिक समुदायों का दबदबा है। लेकिन, धर्मनिरपेक्षता भारत का एक बेहद सशक्त पक्ष है। इतने कारकों के बावजूद भी 'डेमोक्रेसी इंडेक्स 2020' यानी 'लोकतंत्र सूचकांक' में भारत को 51वां स्थान प्राप्त हुआ। यह स्थान 2018 में 41वां था। यह सूचकांक लंदन स्थित द *इकोनॉमिस्ट इंटेलिजेंस* यूनिट हर साल जारी करती है। भारत को दोषपूर्ण लोकतांत्रिक देशों की श्रेणी में रखा गया है। यह रिपोर्ट लोकतांत्रिक देशों की स्थिति का आकलन पाँच मानकों पर करती है। चुनाव प्रक्रिया और बहुलतावाद, सरकार की कार्यशैली, राजनीतिक भागीदारी, राजनीतिक संस्कृति और नागरिक आजादी। गौरतलब है कि ये सभी पैमाने एक–दूसरे से जुड़े हैं और इन पाँचों पैमानों के आधार पर ही किसी भी देश में मुक्त और स्वच्छ चुनाव और लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थिति का पता लगाया जाता है। भारतीय राजनीति की प्रमुख विशेषता यह भी है, कि यहाँ किसी भी पार्टी के एक चेहरे के आधार पर वोट डालने का चलन प्रभावी है। यही कारण है कि एक सामान्य उम्मीदवार जो किसी पार्टी से ताल्लुक नहीं रखता है, उसे अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिये बहुत संघर्ष करना पड़ता है।

वर्तमान समय में विश्व कोरोना नामक महामारी का प्रकोप झेल रहा है। कोरोना वायरस के लक्षण एक मामूली जुखाम से लेकर ज्यादा गंभीर रोग जैसे हो सकते हैं। महामारी के वैश्विक संकट ने दुनिया को एक अनिश्चित भविष्य की तरफ बढ़ा दिया है। इस संकट के बीच एक ऐसा भी दौर आया जब दुनिया की प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय संस्थानों ने बयान जारी किए कि दुनिया भारत की तरफ देख रही है। ऐसा नहीं है कि एक आदर्शवादी सोच के अनुसार यह कथन संकट की घड़ी में भारत के लड़ने की असीम क्षमता से संबंधित था। बल्कि भारत ने पूर्व में पोलियो जैसी गंभीर बीमारी को गांव–गांव में दो बूंद पोलियो की अभियान से शून्य करके दिखाया था। लेकिन इस अदृश्य महामारी से लड़ना आसान नहीं है। जहाँ अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली और स्पेन जैसे लोकतांत्रिक देश कोरोना संकट से जूझने में असफल रहे, वहीं कुछ गैर-लोकतांत्रिक साम्यवादी देशों जैसे चीन, उत्तर कोरिया और वियतनाम आदि ने अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन किया। जहाँ स्वतंत्रता से ज्यादा जन सुरक्षा महत्वपूर्ण रही कठोर नियमों के द्वारा इन देशों ने बहुत ही जल्दी महामारी पर विजय प्राप्त की। देशव्यापी लॉकडाउन ही इस महामारी का अंतिम विकल्प था। यह पहली बार नहीं है, कि विश्व महामारी के चपेट में आया है। प्रश्न यह है, कि संसाधनों के बढ़ते दोहन और मूल्यों की आहुति की कीमत आम जन क्यों चुका रहा है? कोविड-19 महामारी ने मानव जीवन के हर पहलू को अस्त-व्यस्त कर दिया है। सबसे अहम बात यह है, कि इस घातक वायरस के खतरे को जल्द खत्म होने की संभावना बेहद कम है। क्योंकि, दुनिया के कई हिस्सों में इस महामारी के प्रकोप के दूसरी या तीसरी

लहर भी देखने को मिल रही है। वहीं, इससे छुटकारा दिलाने के लिए जिस वैक्सीन का इंतजार है, उसकी कामयाबी की सूचना नहीं मिली है। विचार करने वाली बात यह है, कि इस असमंजस की स्थिति में लोकतंत्र कैसे पनप पाएगा? सामाजिक दूरी के कारण जनता अपने नेताओं से कैसे रूबरू होगी?

चुनावी अभियानों का बदला रूप

वर्तमान समय में इस महामारी का प्रकोप कम होता नहीं दिख रहा है। धीरे-धीरे मामलों में बढ़ोतरी हुई है। फिर भी सामान्य जनजीवन नयी सामान्य अवस्था की ओर उन्मुख है और उसी में सामान्य अवस्था की एक महत्वपूर्ण अवस्था है, लोकतांत्रिक देशों में चुनाव। कोरोना वायरस के कारण भारतीय राजनीतिक दलों को चुनाव अभियानों के लिए जल्द ही एक नया विकल्प तलाशना होगा। भारतीय राजनीति में स्पर्श और महसूस की अवधारणा है। जिसमें बड़ी रैलियाँ, भव्य आयोजन प्रमुख है। जिससे जन बल का प्रदर्शन हो सके। भारतीय जनता ना तो इतनी शिक्षित है और न ही इतनी संपन्न की डिजिटल वोटों का विकल्प तुरंत तैयार किया जा सके। लेकिन 2014 लोकसभा चुनावों में डिजिटल माध्यमों से लोगो को जोड़ने और उन तक बात पहुंचाने का काम किया गया। लेकिन सवाल यह है, कि कहाँ तक और कितने लोगों तक? कोरोना से लड़ने के लिए देश भर में 3 मई 2020 तक लॉकडाउन का ऐलान कर दिया गया। क्योंकि देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और ज्यादातर राज्यों के मुख्यमंत्री ये मानते हैं कि कोरोना से लड़ने के लिए लॉकडाउन को छोड़ दूसरा कोई रास्ता नहीं। भारत जैसे सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश में शुरूवात में प्रसार कम रहा लेकिन कुछ समय बाद ही भारत दूसरा सबसे ज्यादा प्रभावित देश बन गया। लॉकडाउन से उद्योग धंधे बंद हुए, रोजगार छीने जनमानस की आर्थिक आधारशिला डगमगाने लगी।

पूर्व में भी भारत ने महामारी का प्रकोप झेला है। 1918 में स्पेनिश फ्लू नाम की महामारी फैली थी। एक अनुमान के मुताबिक उस महामारी में भारत में 1.8 करोड़ लोगों की जान गयी थी। उस वक्त भारत की आबादी छह प्रतिशत थी। वॉल स्ट्रीट जर्नल के एक लेख में कोरोना की तुलना उसी महामारी से की गयी है। तब से लेकर अब तक दुनिया काफी बदली है। ब्रिटिश लेखिका लारा स्पिनी ने 1918 की महामारी के भारतीय राजनीति पर पड़े असर का जिक्र भी पुस्तक में किया है। *''पेल राइडर : स्पैनिश फ्लू ऑफ 1918 एंड हाउ इट चेंज्ड द वर्ल्ड''* इसमें बताया गया है, कि महामारी में हुए भारी नुकसान की वजह से भारत में अंग्रेजी शासन से विश्वास उठ गया था। इसके बाद उन्होंने स्वतंत्रता के लिए चल रहे संघर्षो में अपना समर्थन बढ़ाना शुरू किया और तीन दशकों बाद भारत को आजादी मिल गयी। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास को देखने पर भी यह पता चलता है। कि आजादी से सम्बंधित बड़ी और निर्णायक गतिविधियाँ 1918 के बाद ही हुईं।[1]

वर्तमान में सत्ता में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। लेकिन बाकि तौर तरीकों और व्यवहार के लिहाज से भारतीय राजनीति भी कोरोना वायरस के प्रभाव से अछूती नहीं दिखती है। अप्रत्यक्ष रूप से सभी राजनीतिक गतिविधियाँ चल रही हैं। बिहार चुनाव के संदर्भ में, भारतीय जनता पार्टी ने बिहार चुनाव के लिए अपने घोषणा पत्र में जो फ्री कोरोना वायरस वैक्सीन का वादा किया। वह चुनाव आचार संहिता का उल्लंघन नहीं है, चुनाव आयोग के पास दाखिल की गई एक आरटीआई के जवाब में आयोग ने यह जानकारी दी है। चुनाव आयोग ने इस बात की जानकारी आरटीआई कार्यकर्ता साकेत गोखले की ओर से दी शिकायत के जवाब में दिया है। गोखले ने आरोप लगाया था, कि इस तरह की घोषणा केंद्र सरकार की शक्तियों का दुरुपयोग है और मतदाताओं को गुमराह करने का प्रयास किया गया है। ये वादा ऐसे समय में किया गया है। जिस समय वैक्सीन की नीति तय नहीं है। हालांकि, चुनाव आयोग ने बीजेपी के फ्री कोरोना वैक्सीन के वादे को आचार संहिता का उल्लंघन नहीं माना है।[2] पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त ओ.पी. रावत का मानना है, कि वायरस का भविष्य के चुनावों पर कोई प्रभाव नहीं होगा। उन्होंने कहा, इससे पहले भी कई बार महामारियाँ फैली हैं, लेकिन व्यवस्था में बिना किसी बदलाव के ही चुनाव कराए गए हैं। लेकिन एक अन्य पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त नसीम जैदी की सलाह दी है कि निर्वाचक मंडल को चुनाव कराने की मानक संचालन प्रक्रिया की समीक्षा करने के लिए एक टास्क फोर्स का गठन करना चाहिए।[3] वर्तमान नए सामान्य के संदर्भ में सामाजिक दूरी बनाते हुए भारतीय चुनावों को सम्पन्न कराना बड़ी चुनौती है।

प्रवासी समस्या

प्रवासी अंतर्देशीय, अंतरप्रांतीय और एक ही प्रांत के हो सकते हैं। आमतौर पर जो लोग अपने देश या राज्य छोड़कर रोजगार की तलाश में दूसरे देश या राज्य में रहते हैं। उन्हें 'प्रवासी' कहते हैं। राज्य समुदायों का समुदाय है। भारत के संदर्भ में यह बात और भी विस्तृत हो जाती है। जहाँ कोस-कोस पर बोली, खान-पान, पहनावा बदलता है। यह आज भी दुर्भाग्य की बात है। कि हमारा संविधान हमें शिक्षा का अधिकार तो देता है लेकिन रोजगार का अधिकार नहीं देता। प्रवासी मजदूरों का सामाजिक समूह जो असंगठित है। आजीविका और एक सुखद भविष्य की आस लिए अपना घर, गाँव, राज्य छोड़ देते हैं। हर साल इन मजदूरों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि होती है। लॉकडाउन के बाद जहाँ उद्योग धंधे, सार्वजनिक स्थल, मनोरंजन स्थल सभी बंद हो गए हैं। उस परिस्थिति में ये लोग वापस घर लौटने को मजबूर हुए। जिस आर्थिक अस्थिरता को दूर करने के लिए उन्होंने अपना घर छोड़ा आज वही उनके सामने फिर खड़ी है। जहाँ उनके लिए यह दुविधा है। कि अगर वह महामारी से नहीं तो भूख से जरूर मर जायेंगे। प्रवासी मजदूरों को लेकर राजनीति भी खूब की गयी है। शासन प्रशासन द्वारा प्रवासी मजदूरों के लिए कई अहम कदम उठाये गए। लेकिन वह

सही दिशा में कार्यान्वित न हो सके। लॉकडाउन का औचित्य इसी में था, कि लोगों के सामाजिक संपर्क को कम किया जा सके। भारत जैसे सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश में ऐसी महामारी को रोकना किसी चुनौती से कम नही है। प्रवासी मजदूरों में जागरूकता और शासन के प्रति विश्वास की कमी ने इस समस्या और बढ़ा दिया। लोकतांत्रिक देश में जनता सर्वोपरि होती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में देखने को मिला। साल 2020 का सबसे बड़ी महाशक्ति का चुनाव, डोनाल्ड ट्रंप को इस बार 70 मिलियन यानी सात करोड़ से ज्यादा वोट मिले। जो अमेरिका के इतिहास में दूसरा सबसे बड़ा वोटिंग नंबर है। राष्ट्रीय स्तर पर उन्हें 47 प्रतिशत से अधिक वोट मिले। हालांकि, वे चुनाव हार गये हैं और अब उनका नाम आधुनिक युग के उन चार राष्ट्रपतियों में शामिल हो गया है जो राष्ट्रपति पद पर होते हुए चुनाव हार गये। माना जाता है, कि डोनाल्ड ट्रंप साल 2016 में राष्ट्रपति पद का चुनाव इसलिए जीते थे क्योंकि वे लीक से हटकर चलने वाले और गैर-राजनीतिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार थे। जिन्होंने उन विषयों पर भी खुलकर बात की जिन पर पहले राजनीतिक तौर पर बात नहीं होती थी। लेकिन 2020 में डोनाल्ड ट्रंप राष्ट्रपति पद का चुनाव हार गये। क्योंकि वे लीक से हटकर चलने वाले नेता थे। उन विषयों पर भी बड़े आक्रामक ढंग से बयान दिये जिन पर बोलने से राजनीतिज्ञ बचते थे।[4] इसके साथ ही उनके द्वारा कोरोना महामारी के संबंध में लिए गए निर्णय व नस्लभेदी प्रदर्शन उनकी हार के प्रमुख कारण बने। इससे यह ज्ञात होता है, कि कैसे परिस्थितियाँ लोकतांत्रिक चुनावों को प्रभावित करती हैं। भारत में अब एक नया वर्ग उभरा है। प्रवासी वर्ग जिसे रोजगार के साथ रोजगार सुरक्षा व अच्छा मानवीय जीवन का अधिकार है। जरूरत है, ऐसी नीतियों की जो प्रवासियों को उनके गांव उनके राज्य में ही रोजगार उपलब्ध करा सके।

कमजोर विपक्ष

लोकतान्त्रिक संसदीय शासन प्रणाली के लिए सबसे आवश्यक घटक होता है, एक मजबूत विपक्ष। विपक्ष का अर्थ होता है, विकल्प। विकल्प जो शासन को निरंकुश होने से रोकता है। उसके कार्यो और नीतियों का परीक्षण करता है। विपक्ष ऐसा जिसके कथनों को सत्ता पक्ष भी संजीदगी से सुने। सत्रहवीं लोकसभा में सरकार के सामने आधिकारिक रूप से विपक्ष का नेता नहीं है। उस पार्टी को विपक्ष का नेता बनने का मौका मिलता है। जिसके पास कम-से-कम 10 फीसदी सीटें हासिल हों। यानी 543 सीटों वाले लोकसभा में विपक्ष का नेता उस पार्टी का होगा, जिसके पास कम-से-कम 55 सीटें होंगी। कोरोना काल में विपक्ष की भूमिका और भी कठिन हो गयी वह न तो पूरी तरह से सरकार की आलोचना कर पा रही हैं और न ही उसका समर्थन। मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस ने भारतीय मीडिया को दिए जाने वाले सरकारी विज्ञापन पर दो साल की रोक लगाने की सलाह दी। मीडिया आउटलेट्स की कमाई का बड़ा

हिस्सा सरकारी विज्ञापनों से ही आता है, ये आउटलेट्स कांग्रेस के सुझाव के लिए उसकी आलोचना कर रहे हैं। किसी भी राष्ट्रीय संकट के समय लोग अपने मतभेद भुलाकर साथ खड़े नजर आते हैं। भारतीय राजनीति मनुष्य की इस स्वाभाविक वृत्ति के खिलाफ खड़ी है।[5] जनतंत्र सामाजिक विकास के लिए सबसे मजबूत हथियार सिद्ध हो सकता है। किंतु उसका अनाड़ी तरीके से उपयोग किया जाएगा तो वह उसे रक्तरंजित करेगा। जनतंत्र का अभिप्राय मिथ्या आरोप और निंदा से नहीं है। गैर-जिम्मेवारी उसका पर्याय नहीं है जनतंत्र में अधिक दायित्व और अधिक संयम जरूरी है।[6]

सभी राजनैतिक दल केवल अपना हित साधने में लगे है कैसे दबाब बनाया जाए और सत्ता पक्ष को हटाया जाए बल्कि जरूरत है सही नीतियों की विपक्ष को चाहिए की जो भी सत्य है वह जनमानस के सामने रखा जाए।

सहकारी संघवाद

भारतीय संविधान में सहकारी संघवाद की व्यापक परिकल्पना है। यह केन्द्र द्वारा राज्यों पर अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन लगाए जाने तक सीमित नहीं है। इसी अवधारणा को लेकर 1974 में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी भी की थी, कि संघवाद एक ऐसा तंत्र है, जिसमें सरकार की शक्ति को केन्द्र सरकार और निर्वाचन ईकाइयों में बांट दिया जाता है। संविधान ने इसी परिकल्पना को लेकर भारत को 'राज्यों का समूह' घोषित किया है। भारत में संविधान की सातवीं अनुसूची के बिन्दु छह में स्वास्थ्य को राज्य सूची में रखा गया है। केंद्र और राज्यों ने भारतीयों को कोरोना जैसी महामारी से बचाने के लिए आपसी सहायता और समन्वय से नियम और कानून बनाये। महामारी रोग अधिनियम 1897 और आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 ऐसे ही दो कानून हैं। संवैधानिक रूप से महामारी रोग अधिनियम केंद्र और राज्य, दोनों को अपने-अपने अनुसार महामारी को नियंत्रित करने की छूट देती हैं। इस कानून के तहत केंद्र सरकार राज्य के सभी प्रवेश और निकास द्वार को नियंत्रण में लेकर बंद कर सकता है, एवं राज्य सरकार भी अपने क्षेत्राधिकार में स्थिति को नियंत्रित करने के लिए इस प्रकार के कदम उठा सकती है।[7] कोरोना महामारी को हाराने के लिए भारत की सफलता पूर्ण रूप से केंद्र और राज्य के सहयोग पर टिकी है। केंद्र सरकार के द्वारा महामारी के प्रसार की क्षमता को जानने के लिए क्षेत्रों को लाल, नारंगी व हरे क्षेत्रों में बाटा गया इस नीति के संदर्भ में राज्यों और केंद्र के मध्य तनाव देखने को मिला। राज्यों ने और अधिक स्वायत्ता की मांग की देश में महामारी की घोषणा के बाद से अब तक चार बार प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्रियों के बीच वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से बैठक हो चुकी है। इन सभी बैठकों में एकतरफा राज्यों ने केंद्र के लॉकडाउन के निर्णय का समर्थन किया, साथ ही राज्यों ने केंद्र से आर्थिक सहायता भी मांगी। प्रधानमंत्री ने भी राज्यों की कोशिशों की सराहना की और सभी प्रकार की सहायता के लिए भी भरोसा दिलाया।[8] उल्लेखनीय है, कि राज्य वे इकाई

होते हैं, जो किसी भी घटना (वर्तमान समय में कोरोना महामारी) के लिए सबसे पहले प्रतिक्रिया देते हैं। जरूरत है, कि इकाइयों को आर्थिक स्वायत्तता प्रदान की जाए। जिससे उनकी केंद्र पर से निर्भरता कम हो सके।

निष्कर्ष

महामारी ने जनमानस के सामने जीवन निर्वाह की विकराल समस्या खड़ी की है। लोकतंत्रिक देशों के लिए इस समस्या का निराकरण करना चुनौती पूर्ण रहा। समय रहते लॉकडाउन, जनता के लिए राहत पैकज और आम जरूरतों पर काम किया गया फिर भी प्रशासनिक और स्वास्थ्य स्तर की कमियों ने कमजोर व्यवस्था को उजागर कर दिया। आर्थिक अधिकार कमजोर होने पर राजनीतिक अधिकार व नागरिक अधिकार खोखले लगने लगे। महामारी ने लोकतंत्रिक रिश्तों को भी उलझा दिया। इस महामारी ने लोकतंत्र के सामने एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा दिया है कि कैसे शासन की नीतियों और जनता में सामंजस्य बैठाया जाये? ये सोचनीय विषय है कि क्या कमी लोकतंत्र में हैं या लोगों की जागरूकता में। आज भी आमजन अपने मूलभूत अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। शासन अपने नियमों और कानूनों का सही अर्थ जनमानस तक पंहुचा नहीं पा रहा। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण प्रवासी मजदूरों में देखने को मिला। महामारी के कारण जो लोकतान्त्रिक कमियाँ उजागर हुईं। जरूरत है, उन पर काम करने की केवल राजनैतिक बयानबाजी से विकास के लक्ष्यों को पूरा नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शेखर, हिमांशुः *''कोरोना वायरस भारतीय राजनीति को किस-किस तरह से प्रभावित कर सकता है?''*, सत्याग्रह, अप्रैल 28, 2020.
2. *''फ्री कोरोना वैक्सीन का वादा नहीं है चुनाव आचार संहिता का उल्लंघनः चुनाव आयोग ''*, इण्डिया टीवी हिन्दी, अक्टूबर 31, 2020.
3. *''अगर कोरोना काल में हुआ चुनाव तो कोरियाई मॉडल हो सकता है लागूः चुनाव आयोग''*, अमर उजाला, अप्रैल 24, 2020.
4. ब्रायंट, निकः *''अमेरिका चुनाव 2020ः डोनाल्ड ट्रंप की हार की ये वजहें रहीं ''*, बीबीसी, 8 नवंबर 2020ण
5. सिंह, भूपेंद्रः *''कोरोना वायरस के चलते देश गंभीर संकट के मुहाने पर खड़ा, राष्ट्रीय संकट के समय भी नफरत की राजनीति''*, जागरण, मार्च 19, 2020.
6. सिंघवी, लक्ष्मीमल्ल (2009): *''लोकतंत्र की विडम्बना''*, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली.
7. यथावतः *''कोरोना 19 और सहकारी संघवाद''*, वाद-विवाद-संवाद यथावत, मई 28, 2020.
8. यथावतः *''कोरोना 19 और सहकारी संघवाद''*, वाद-विवाद-संवाद यथावत, मई 28, 2020.

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और पंचायतीराज व्यवस्था : एक मूल्यांकन

मो० ताहिर अन्सारी

Ikjk'k भारत में प्राचीन काल से ही पंचायतों का गठन होता रहा है। वैदिक वाङ्मय में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। आगे चलकर चोल साम्राज्य में भी इसके प्रमाण देखने को मिलते हैं। सल्तनत काल और ब्रिटिश काल से होते हुए स्वतन्त्र भारत में पंचायतों के गठन की प्रक्रिया जारी रही। बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन ने इसे गति प्रदान की। समय के सापेक्ष अशोक मेहता, सिंधवी और थुंगल समिति की सिफारिशों से इसे बल मिला और इसकी पराकाष्ठा 73वें संवैधानिक संशोधन में दिखलायी पड़ी। अभीष्ट शोध पत्र में भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के रूप में पंचायती राज के विकास के विविध चरणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना

भारतीय समाज और शासन व्यवस्था में ग्राम पंचायत प्राचीन काल से ही विद्यमान रहे हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है जो वास्तविक लोकतन्त्र स्थापित करने में अहम भूमिका का निर्वाह करती है। पंचायती राज का उद्देश्य गाँवों को आत्मनिर्भर बनाना था। इसके लिए लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को साकार करके गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, जात-पात, अंधविश्वास, भुखमरी जैसी बुराइयों को समाप्त करके एक स्वस्थ एवं लोकतान्त्रिक समाज का निर्माण करना था। भारत में पंचायती राज का स्वरूप महात्मा गाँधी के सर्वोदय तथा ग्राम स्वराज की अवधारणा पर आधारित है। गाँधी जी की धारणा थी कि यदि भारत का विकास करना है तो समाज के अन्तिम बिन्दु पर खड़े व्यक्ति के विकास के साथ ही यह प्रक्रिया सफल हो सकती है (Prasad, Iswari, 1972)।

भारत में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया प्राचीनकाल से किसी-ना-किसी रूप में चली आ रही है। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में 'सभा एवं समितियों, के रूप में

लोकतांत्रिक संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में 'ग्रामीण' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसका चुनाव ग्राम सदस्यों के द्वारा किया जाता था। धार्मिक ग्रन्थ रामायण तथा महाभारत में भी शासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में ग्राम पंचायत का उल्लेख मिलता है। आचार्य मनु द्वारा रचित ग्रंथ मनुस्मृति में भी 'ग्रामीण स्वशासन' का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ग्राम स्वराज की चर्चा की गयी है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने भी अपने यात्रा-वृतांत में भारत के ग्राम प्रशासन का वर्णन किया है। गुप्तकाल में पंचायत-प्रणाली का विकास एक ऐसे रूप में हुआ जिसने ग्रामीण जीवन को समृद्ध एवं खुशहाल बनाने का कार्य किया। दक्षिण भारत का चोल प्रशासन ग्रामीण प्रशासन का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। चोलकाल में ग्रामीण प्रशासन के लिए अनेक समितियों का उल्लेख मिलता है (अल्तेकर, 2001)।

मुगल शासन काल में ग्राम एक प्रशासनिक इकाई थी। मुगल काल के शासकों ने चली आ रही ग्राम प्रशासन व्यवस्था में कोई सुधार नहीं किया। मुगल शासकों द्वारा शुरू की गयी जमींदारी प्रथा ने जमींदारों को मुगल प्रशासन के लिए गाँवों से राजस्व प्राप्त करने वाला एजेन्ट बना दिया। फलतः पुरातन ग्राम्य स्वशासन व्यवस्था मूलभूत रूप से कमजोर हो गयी (शर्मा, एल0पी0, 2011)। सन् 1764 के बक्सर के युद्ध के बाद भारत की शासन व्यवस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन हो गयी। इस काल में ग्रामीण संस्थाओं का स्वरूप नष्ट हो गया तथा प्रशासन का स्वरूप एकीकृत हो गया। 1857 के महान क्रान्ति के पश्चात अंग्रेजी संसद ने 1858 का भारत सरकार अधिनियम पारित कर भारत की शासन व्यवस्था को कम्पनी के हाथों से हटाकर क्राउन के अधीन कर दिया। सन् 1861 के 'भारत परिषद् अधिनियम' में वैधानिक एवं वित्तीय विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाने पर जोर दिया गया फलतः नगरपालिकाओं तथा जिला परिषदों के रूप में स्थानीय स्वशासन का मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् 1881-82 में लार्ड रिपन के काल में एक नया अधिनियम लाकर स्थानीय स्वशासन के नियम का विस्तार किया गया। इसलिए लॉर्ड रिपन को स्थानीय स्वशासन के जनक के रूप में जाना जाता है। इस अधिनियम में स्थानीय स्वशासन के स्थापना के लिए निम्नांकित प्रमुख प्रावधान किए गए –

- स्थानीय स्वशासन हेतु गठित समितियों एवं बोर्डों के अध्यक्ष जनप्रतिनिधि ही होंगे।
- समितियों एवं बोर्डों के गैर-सरकारी सदस्य स्थानीय जनता के द्वारा चुने जायेंगे।
- प्रत्येक प्रान्त अपनी स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर इस प्रस्ताव को लागू करेंगे।

यद्यपि लार्ड रिपन का यह प्रतिवेदन लागू तो किया गया किन्तु वह मूर्तरूप न ले सका (माहेश्वरी, श्रीराम, 1974)।

स्थानीय संस्थाओं के विकास के क्रम में 1908 में हॉब हाउस की अध्यक्षता में एक पुनर्गठन आयोग द्वारा यह निश्चित किया गया कि जिला बोर्ड, अधीनस्थ जिला बोर्ड तथा ग्राम पंचायतों का भी विकास किया जाए। 1918-19 की मॉंट-फोर्ड रिपोर्ट ने यह सुझाव दिया कि "यथा सम्भव स्थानीय निकायों में पूर्ण लोकप्रिय नियन्त्रण होना चाहिए तथा बाध्य नियन्त्रण से उन्हें अधिकाधिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए" (ग्रोवर, बी0एल0, 2005, पृ0 202)। सन् 1919 में पारित भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था की स्थापना हुई तथा स्थानीय स्वशासन पूर्ण रूप से प्रान्तीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आ गया। प्रत्येक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित कई अधिनियम पारित किये गये। लॉडरिपन के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को यहाँ से मूर्तरूप मिलना शुरू हो गया। निर्वाचित मंत्रियों के अधीन स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित विषय रहने के कारण विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों ने इसमें काफी रूचि दिखलायी (माहेश्वरी, श्रीराम, 1971)। सन् 1935 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता का आरम्भ और विकास हुआ। स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहित करने के लिए बम्बई, मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के राज्य सरकरों ने कुछ ठोस कदम उठाये तथा सुधार एवं सुझाव हेतु कई समितियों का गठन किया। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ हो जाने से इस पर विराम लग गया और 1946 तक स्थानीय स्वशासन पर संकट के बादल मंडराते रहे।

भारतीय संविधान तथा पंचायती राज व्यवस्था

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रणेता महात्मा गाँधी ग्राम स्वराज तथा पंचायती राज व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। महात्मा गाँधी गाँवों को एक संगठित आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे जो जीवन के प्रत्येक जरूरतों को स्वयं पूरा कर सके। स्थानीय मामलों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों का हस्तक्षेप न्यूनतम हो तथा गाँवों को विशेष अधिकार प्राप्त हो, जिससे वह ग्रामीण प्रशासन एवं न्यायिक कार्य स्वयं कर सके। गाँधी जी का विचार था कि सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठे हुए बीस लोगों द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। गाँव के प्रत्येक नागरिक एवं सदस्यों के द्वारा ही इसे मूर्तरूप दिया जा सकता है। पंचायत जन सेवा के लिए होती हैं। यदि एक गाँव भी पंचायती राज चाहे तो उसे रोका नहीं जा सकता (गाँधी, मोहनदास करमचन्द, 1961)। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जब संविधान निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ, तब गाँधी जी के विचारों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया किन्तु बाद में गाँधी जी के विरोध के बाद राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में अनुच्छेद 40 में राज्य को यह निर्देश दिया गया कि वह गाँवों में पंचायतों की स्थापना करने तथा उन्हें ऐसी शक्तियाँ देने के लिए उचित कदम उठायेगा जो स्थानीय स्वशासन के लिए आवश्यक हो (नारंग, एस0एन0, 2005)।

ग्राम स्वराज के सपने को पूरा करने के लिए सन् 1952 में सामुदायिक विकास

योजना लागू की गयी, जिससे ग्रामीण जनता सहभागी बन सके। इस सम्बन्ध में सन् 1956 भारत सरकार द्वारा एक नियमित सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय की स्थापना की गयी। सामुदायिक विकास योजनाओं एवं राष्ट्रीय प्रसार सेवा के अध्ययन एवं मूल्यांकन के लिए योजना आयोग ने जनवरी 1957 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक *"प्लान प्रोजेक्ट्स कमेटी"* की स्थापना की, जिसे 'बलवंत राय मेहता समिति' के नाम से भी जाना जाता है। इस समिति का प्रमुख उद्देश्य इस बात का पता लगाना था कि सामुदायिक विकास योजना तथा कार्यक्रम किस सीमा तक लोगों में स्थानीय विषयों में रूचि पैदा करने तथा सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में निरंतरता बनाए रखने के लिए संस्थाओं का निर्माण करने में सफल रही है? साथ ही किस तरह से इन योजनाओं के प्रति लोगों की रूचि और सहभागिता को व्यापक स्तर पर बढ़ावा दिया जा सकता है? यह समिति ने अपनी जाँच में इस निष्कर्ष पर पहुँची कि तदर्थ सलाहकारी संस्थाएँ सामुदायिक विकास योजनाओं में लोगों की रूचि और जन सहभागिता बढ़ाने में विफल रही है। उन्होंने अपने प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया कि ग्रामीण विकास के लिए तदर्थ सलाहकार समितियों के स्थान पर नये लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण किया जाए और कानून बनाकर व्यापक अधिकार और कर्त्तव्य दिये जाएँ। उन्हें महत्वपूर्ण दायित्वों के पालन के लिए प्रशासकीय सहायता तथा पर्याप्त साधनों से सम्पन्न किया जाये।

बलवंत राय मेहता समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल देते हुए त्रिस्तरीय पंचायती राज की विस्तृत रूपरेखा की संस्तुति की। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लाक स्तर पर पंचायती समिति, तथा जिला स्तर पर जिला परिषद् समिति। बलवन्त राय मेहता समिति ने इन तीनों स्तरों की संस्थाओं को आंशिक रूप से संबद्ध करते हुए उनके संगठनात्मक और क्रियात्मक सम्बन्धों की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस समिति के प्रतिवेदन के अनुरूप तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले के बगदरी गाँव में 2 अक्टूबर 1959 को पंचायती राज व्यवस्था लागू किया। इसके बाद धीरे-धीरे पूरे भारत में इसे लागू किया गया। बलवंत राय मेहता समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पाँच मौलिक सिद्धान्तों को रेखांकित किया जो निम्नलिखित है :

1. ग्राम से लेकर जिले स्तर पर त्रिस्तरीय आपस में सम्बद्ध स्थानीय स्वशासन निकाय होना चाहिए।
2. इन निकायों को अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने योग्य बनाने के लिए शक्ति एवं उत्तर दायित्व का यथार्थ हस्तान्तरण होना चाहिए।
3. इन निकायों को उत्तरदायित्व पूरा करने योग्य बनाने के लिए पर्याप्त आवश्यक संसाधनों का हस्तान्तरण होना चाहिए।
4. ग्राम, खण्ड एवं जिला स्तर पर सभी कल्याणकारी और विकास योजनाओं

तथा कार्यक्रमों को केवल इन निकायों के माध्यम से ही जनता तक पहुँचाया जाना चाहिए।

5. त्रिस्तरीय व्यवस्था को शक्ति एवं उत्तरदायित्व का अन्तरण तथा प्रकीर्णन भविष्य में और आगे बढ़ाना चाहिए।

बलवंत राय मेहता समिति के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में सुझाव देन हेतु सरकार द्वारा विविध समितियों का गठन किया गया। जिसमें अशोक मेहता समिति, जे.के.वी. राव समिति, डॉ. एल.एम. सिंधवी समिति एवं पी.के. थुंगन समिति प्रमुख हैं।

पंचायती राजव्यवस्था के मूल्यांकन तथा इसे और प्रभावी बनाने के लिए केन्द्र में पहली बार सत्ता में आयी जनता पार्टी की सरकार ने सितम्बर 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया। इस समिति ने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। अपने रिपोर्ट में इसने पंचायती राज व्यवस्था को तीन क्रमों में विभाजित किया (पंचायती राज समिति रिपोर्ट, 1978)।

1. उत्थान का क्रम (1949 से 1964)
2. स्थिरता का क्रम (1964 से 1969) और
3. पतन का क्रम (1969 से 1977)

अशोक मेहता समिति ने इस बात पर बल दिया कि इनमें अधिकांश त्रुटियाँ और कमियाँ पंचायती राज की त्रुटियाँ और कमियाँ नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण भारत के विकास के संचालक के रूप में कार्य करने का अवसर ही नहीं दिया गया है। समिति ने यह अनुभव किया कि बलवंत राय मेहता समिति ने सन् 1947 में जिस लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना में ब्लाक स्तर पर जन सहभागिता और नियंत्रण पर बल दिया था, वह 1977 तक आते–आते प्रभावहीन हो गया, क्योंकि इन वर्षों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। समिति ने 'विकास की गति विज्ञान' के नाम से अपने एक अध्याय में अब तक के विभिन्न विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करते हुए उनके भविष्य का मूल्यांकन किया तथा पंचायती राज संस्थाओं के संगठन एवं कार्यों पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों की समीक्षा करते हुए उसने बलवंत राय मेहता की सिफारिशों और सुझावों से अलग सुझाव दिया। इस समिति ने पंचायती राज व्यवस्था के त्रिस्तरीय मॉडल के स्थान पर द्विस्तरीय मॉडल की संस्तुति दी, जिसमें जिला स्तर पर जिला परिषद् व मंडल स्तर पर मण्डल पंचायत शामिल थे। अशोक मेहता समिति ने मण्डल पंचायतों के लिए 15 से 20 हजार की जनसंख्या और 10 से 15 गाँवों को शामिल करने का सुझाव दिया। साथ ही कहा कि जिला परिषद्ों को शक्तिशाली बनाकर इसी के माध्यम से सभी विकास के कार्यों को संचालित कराया जाना चाहिए तथा विकास की योजनाओं का

निर्माण जिला परिषद् द्वारा व क्रियान्वयन मण्डल पंचायत द्वारा किया जाना चाहिए। इस समिति ने पंचायत चुनावों में राजनीतिक दलों को प्रत्यक्ष रूप में अपने चुनाव चिन्हों के साथ भाग लेने की सिफारिश की, तथा ग्राम पंचायत एवं पंचायत समिति को समाप्त करने का सुझाव दिया। इस समिति की संस्तुतियों पर निर्णय लेने और लागू करने के पूर्व ही जनता पार्टी की सरकार ने त्यागपत्र दे दिया। बाद में सन् 1980 के चुनाव के बाद केन्द्र में कांग्रेस (ई) की सरकार आने के बाद इसे अपर्याप्त मानते हुए अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात सन् 1885 में केन्द्र में स्थापित श्री राजीव गाँधी की सरकार ने ग्रामीण विकास एवं गरीबी-उन्मूलन से सम्बन्धित प्रशासनिक व्यवस्था पर सिफारिश करने के लिए जे.के.बी. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद् जिला स्तर पर जिला परिषद् मण्डल स्तर पर मंडल पंचायत तथा ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत के गठन की सिफारिश करते हुए जिला परिषद् को सर्वाधिक महत्व दिया परन्तु इसकी सिफारिशों को भी अमान्य कर दिया गया।

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता

पंचायती राज व्यवस्था के इतिहास में सन् 1985 से 1992 तक का काल अत्यंत सक्रिय गतिविधियों का काल रहा है। इस काल में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता देने के लिए गम्भीर विचार-विमर्श किया गया। भारत के जाने-माने वकील एल.एम. सिंधवी ने यह सुझाव दिया कि पंचायती राज व्यवस्था को स्व-शासित संस्थान के रूप में देखा जाना चाहिए तथा इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि इन्हें राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाही के हस्तक्षेपों से दूर रखा जा सके (मिश्र, एस.एन. 2013, पृ0 244)। सन् 1988 में पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने के अलावा इन इकाइयों को तीन स्तरीय ढाँचा प्रदान करने और समितियों की सहायता से कार्य करने की सलाह दी।

पंचायती राज व्यवस्था को और अधिक सशक्त बनाने के लिए वी.एन. गाडगिल के नेतृत्व में काँगेस ने नीति कार्यक्रम सम्बन्धी समिति की स्थापना की। इस समिति ने मई 1989 में अपने प्रतिवेदन के माध्यम से निम्नलिखित सिफारिश की :

1. पंचायती राज संस्थाओं के ढाँचे, गठन, शक्तियों एवं उत्तरदायित्वों में परिवर्तन एवं व्यापक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया जाए।
2. ग्राम, ब्लॉक और जिला तीनों स्तर पर पंचायती राज होना चाहिए। इन तीनों स्तरों पर प्रत्येक पाँच वर्ष में निश्चित रूप से चुनाव होना चाहिए।
3. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित किए जाए।

4. अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत पंचायतों को धन उपलब्ध करने के लिए राज्य वित्त आयोग का गठन किया जाए।
5. केन्द्रीय चुनाव आयुक्त द्वारा चुनाव कराया जाए (मिश्र, एस.एन., 2013, पृ0 245)।

64वाँ संविधान संशोधन

अब तक के विभिन्न समितियों के सुझावों के आधार पर 30 जुलाई 1988 को दिल्ली में बुलाए गए मुख्य सचिवों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए संविधान में संशोधन करने का विचार रखा। इस घोषणा के बाद सरकार ने 1989 में संसद में संविधान संशोधन के लिए 64वाँ विधेयक पेश किया जिसमें निम्नलिखित प्रावधान थे :

1. सभी राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाएँ होंगी।
2. इन संस्थाओं के लिए चुनाव आयोग के देखरेख में प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद निश्चित चुनाव होंगे।
3. पंचायती राज की सभी संस्थाओं में सभी स्थानों को चुनाव द्वारा ही भरा जायेगा, पदाधिकारी सीधे चुने हुए सदस्यों में से ही होंगे।
4. संस्थाओं में 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के आधार पर स्थान आरक्षित होंगे।
5. पंचायती राज संस्थाओं को राज्य सरकार के द्वारा धन दिया जायेगा इसके अलावा यह संस्था निर्धारित मुद्दों पर कर, ड्यूटी तथा टोल आदि लगाकर भी धन एकत्रित करेगी।
6. पंचायती राज संस्थाएँ अपने क्षेत्र के लोगों के लिए आर्थिक विकास सामाजिक न्याय तथा सामाजिक कल्याण के लिए योजनाएं बनाएंगी।
7. पंचायती राज संस्थाओं के लेखों की कड़ी जाँच की जायेगी भारत का महालेखा परीक्षक इसकी जाँच पड़ताल करेगा।

यद्यपि की कांग्रेस के व्यापक बहुमत के कारण यह विधेयक लोकसभा में पारित हो गया किन्तु दुर्भाग्यवश आवश्यक बहुमत न होने के कारण यह राज्य सभा में यह पारित नहीं हो सका।

73वाँ संशोधन अधिनियम और पंचायती राज

73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 के द्वारा भारत में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया। यह पंचायती राज व्यवस्था के

विकास यात्रा में मील का पत्थर है। इस संशोधन ने भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को लागू कर एक नये युग का आगाज किया। इस संशोधन अधिनियम के द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग–1 एवं एक नयी अनुसूची, ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गयी। इसमें 243 एवं 243 (क) से लेकर 243ण तक कुल 16 नये अनुच्छेदों की व्यवस्था की गयी है (भारत का संविधान)। 22 दिसम्बर को लोकसभा एवं 23 दिसम्बर को राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात् 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित होने के पश्चात् 26 अप्रैल 1993 को राजपत्र में प्रकाशित और प्रवर्तित होकर यह अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ।

73वें संवैधानिक संशोधन की प्रमुख विशेषताएँ

1. ग्राम पंचायत के क्षेत्र के मतदाताओं के समूह से एक ग्राम सभा का निर्माण किया जायेगा। ग्राम पंचायत का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा होगा तथा इसमें भाग लेने वाले मतदाताओं या निर्वाचन नामावली में दर्ज व्यक्तियों के समूहों को ग्राम सभा का नाम दिया जाएगा।
2. ग्राम सभा के अधिकार एवं कर्तव्य राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित कानून द्वारा तय किए जाएगें।
3. सभी राज्यों में पंचायती राज का स्वरूप एक समान होगा। यह तीन स्तरीय व्यवस्था पर आधारित होगा।
4. तीनों पंचायत स्तरों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था उनकी जनसंख्या के आधार पर होगी। इनके द्वारा कुल आरक्षित सीटों में से 1/3 स्थान अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।
5. तीनों पंचायत स्तर पर प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से 1/3 स्थान सभी वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे (इसमें एस.सी./एस.टी. की महिलाओं के लिए 1/3 पद भी शामिल है)।
6. संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित शक्तियों तथा अधिकारों के अलावा आर्थिक नियोजन तथा विकास और सामाजिक न्याय इत्यादि से सम्बन्धित योजनाएँ बनाने और उन्हें लागू करने के अन्य अधिकार भी राज्य की विधायिका कानून बनाकर पंचायती राज संस्थाओं को दे सकती है।
7. राज्य सरकार विधान बनाकर पंचायतों को कर, शुल्क और पथकर लगाने का अधिकार सौंप सकती है तथा राज्य की संचित निधि से पंचायतों को सहायता अनुदान देने के साथ–साथ राज्य सरकारों द्वारा अधिरोपित एवं संग्रहित करों में से कुछ अंश पंचायतों को दे सकती है।

8. राज्य सरकार का एक संवैधानिक दायित्व है कि प्रत्येक पाँच वर्ष या उससे एक दिन पहले एक पंचायत वित्तीय आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्य सरकार तथा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में संसाधनों के वितरण के लिए सलाह देगा।
9. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राज्य चुनाव आयोग के द्वारा पाँच वर्ष के लिए करवाये जायेंगे। सदस्यों को योग्यता वही होगी, जो राज्य विधान मण्डल के सदस्यों की योग्यताएँ निर्धारित होगी। इनमें केवल आयु की भिन्नता होगी। पंचायतों के लिए 21 वर्ष न्यूनतम आयु होगी।

पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करने से इनकी कार्यप्रणाली में काफी सुधार आया है। मई 2009 में पंचायती राज विभाग में 73वें संवैधानिक संशोधन के वास्तविक कार्यान्वयन के लिए मण्डल पंचायत एवं ग्राम स्वराज अधिनियम का प्रारूप तैयार किया है। 1996 के 'पेसा अधिनियम' और सन् 2011 के प्रस्तावित सुधार भी पंचायती राज व्यवस्था को मूर्तरूप देने की ओर अग्रसर हैं। पंचायत सदस्यों का सीधा जनता द्वारा निर्वाचन, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लोगों, विशेषकर महिलाओं के लिए पंचायतों में स्थानों का आरक्षण, में अभी तक समाज से वंचित लोगों की सत्ता में भागीदारी द्वारा उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास में गुणोत्तर प्रभाव देखने को मिल रहा है। शिक्षा, भूमि सुधार, ग्रामीण स्वच्छता एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के प्रति लोगों की रूची बढ़ी है। यद्यपि जिन उद्देश्यों के लिए पंचायती राज व्यवस्था को लाया गया है, उसमें अभी तक पूरी तरह से सफलता नहीं मिली है। अभी भी पंचायतों में धन-बल का प्रभुत्व, अशिक्षा, गरीबी, दलगत राजनीति, जनता की उदासीनता, नौकरशाही का असहयोग तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक विसंगतियाँ, जातिवाद जैसे समस्याओं के कारण वास्तविक विकेन्द्रीकरण नहीं हो पाया है किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था ने जनकल्याणकारी योजनाओं में सहभागिता को बढ़ावा दे कर देश के राजनीतिकरण आधुनिकीकरण और सामाजीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

संदर्भ सूची

1. Prasad, Iswari (1972), 'A New History of India', The Indian Press Private Limited, Allahabad, pp.21
2. Maheswari, Shree Ram (1971), 'Local Government in India' Orient Longman, Delhi, pp.17-18
3. अल्तेकर, सदाशिव (2001) 'प्राचीन भारत शासन पद्धति', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 172
4. गाँधी, मोहनदास करमचन्द (1961), 'पंचायत राज' नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, नई दिल्ली, पृ0 19

5. ग्रोवर, बी0एल0 (2005), 'आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन', एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, पृ0 199
6. ग्रोवर, बी0एल0 (2005), 'आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन', एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, पृ0 202
7. नांगर, ए0एस0 (2005), 'भारतीय शासन एवं राजनीति' गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 19
8. 'भारत का संविधान' कानून प्रकाशन, जोधपुर
9. माहेश्वरी, श्रीराम (1974), 'भारत में स्थानीय शासन' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ0 88
10. मिश्र, एस0एन0 (2013), 'पंचायती राज', भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना : नीति और विकास, महेन्द्र प्रसाद सिंह और हिमांशु राय (सम्पादित), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृ0 344
11. मिश्र, एस0एन0 (2013), 'पंचायती राज', भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना : नीति और विकास, महेन्द्र प्रसाद सिंह और हिमांशु राय (सम्पादित), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृ0 345
12. शर्मा, एल0पी0 (2011), 'मध्यकालीन भारत', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, दिल्ली, पृ0 49
13. सामुदायिक विकास एवं नेशनल एक्सटेंशन अध्ययन दल का प्रतिवेदन (अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता), भाग–1, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0 5-6

राज्य सभा की प्रासंगिकता : एक मूल्यांकन

सीमा दास

lkjk'k% विश्व में प्रचलित शासन प्रणालियों में सर्वोत्तम संसदीय प्रणाली को भारत ने अपनाया है। संविधान के आधार पर कार्यरत् हमारी द्विसदनीय प्रणाली में राज्य सभा संसद की उच्च सदन है। इस सदन में लोकतंत्र के सिद्धांतों का समावेश है। जो समाज की गरिमा को परिलक्षित करती है। महत्वपूर्ण संवैधानिक संस्था के रूप में यह सदन राजनीतिक परिर्वतन का केन्द्र रहा है और विधायी प्रक्रिया में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। यद्यपि इस सदन की अनुपयोगिता का तर्क देते हुए इसके अन्त किए जाने की मांग उठती रही है और तुलनात्मक रूप से लोक सभा से कम महत्व दिया गया। जबकि विशिष्ट राजनतिज्ञों की उपस्थिति में सदन न केवल महत्वपूर्ण व संरक्षणकर्त्ता की भूमिका में है अपितु समकालीन परिस्थितियों में इसकी प्रासंगिकता कहीं ज्यादा है। प्रस्तुत लेख में राज्य सभा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय देने और संवैधानिक एवम् व्यावहारिक स्थिति का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए सदन की उपयोगिता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

भारत में द्वितीय सदन का आरम्भ 1918 के चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन से माना गया। 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय विधानमण्डल की स्थापना की गई। द्वितीय सदन के रूप में *काउंसिल ऑफ स्टेट्स* का सृजन करने का उपबंध किया गया, जो 1921 में अस्तित्व में आया।(*rajyasabha.nic,in*) इस एक्ट के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा केन्द्रीय विधान परिषद का स्थान राज्य परिषद्, उच्च सदन तथा विधान सभा, निम्न सदन ने ले लिया। यद्यपि सदस्यों को नामजद करने की कुछ शक्ति बनाए रखी गई तथापि प्रत्येक सदन में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होना अब जरूरी हो गया था।[3] (*कश्यप,1999*) इस संरचना की यह आलोचना हुई कि ऊपरी सदन सर्वथा

अनावश्यक है। क्योंकि इसे कोई विधायी या वित्तीय शक्ति प्राप्त नहीं है। यह सिर्फ ऐसेम्बली के अधिकारों पर रोक लगाने वाली व्यवस्था थी। इस प्रकार एक अनुदारवादी संस्था मानी गई।[4](*शरण,1969*)

पुनः 1935 के अधिनियम के अनुसार दोनों ही सदनों को समान शक्तियाँ प्रदान की गई। ब्रिटेन की अपनी संसदीय स्थिति के विपरीत इस अधिनियम में वित्तीय क्षेत्र में ऊपरी सदन को निचले सदन के समान शक्तियाँ प्राप्त थी।[5](शरण,1969) लेकिन 1935 के अधिनियम में भी प्रान्तों को केन्द्रीय सभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। इस प्रकार संविधान सभा को निर्णय करना था कि नए संघीय संविधान में द्वितीय सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व देना उचित है अथवा नहीं। यद्यपि संविधान सभा ने द्विसदनात्मक व्यवस्था को अपनाया परन्तु उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत विधानमण्डल पूर्ण संसद नहीं थे, किन्तु वे पूरी तरह से अधीनस्थ भी नही थे। यदि सरकार को विधानमण्डल के सहयोग से कार्य करने में असुविधा होती तो विधानमण्डल की उपेक्षा करके भी अपना कार्य कर सकती थी और उसे रोका तो नहीं जा सकता था। लेकिन विधानमण्डल की मदद से तथा उसकी अनदेखी कर मनमानी नहीं कर सकती थी। फलस्वरूप अपनी संवैधानिक सीमाओं के भीतर इन अर्द्ध-संसदों ने अपनी प्रतिष्ठा तथा अपनी स्वतंत्रता बनाएं रखी। यद्यपि सरकार इन संस्थाओं में शक्तिशाली रूप से विद्यमान अवश्य थी। लेकिन सरकार और विधानमण्डल दोनों को अलग-अलग मानने में न कभी कोई सन्देह था और न दोनों को कदापि एक माना जा सकता था। विधानमण्डल सरकार का निर्वाचित अंग था और यह सदैव ही ब्रिटिश शासन के विरोधी पक्ष के रूप में काम करता रहा।(*जोन्स,1970*) तात्पर्य है कि उपनिवेश काल में भी अपनी सीमाओं में ही सही विधानमण्डल का औचित्य था।

स्वतंत्र देश के लिए द्विसदनीय संसद की योजना पहली बार भारतीय संविधान बिल 1895 में शामिल किया गया। बाद में 1927 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता वाली स्वराज संविधान समिति द्वारा स्वतंत्र भारत के लिए इस व्यवस्था की महत्ता पर प्रकाश डाला गया।(*नारायण,2004*) संविधान सभा जो 1950 तक केन्द्रिय विधानमण्डल के रूप में कार्य कर रही थी, अन्तरिम संसद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। जो प्रथम आम चुनाव कराए जाने तक एक सदनीय थी। इसी संविधान सभा में स्वतंत्र भारत के लिए द्वितीय सदन की उपयोगिता पर वाद-विवाद हुआ। तद्पश्चात विशाल देश के बहुलवादि समाज में संघीय व्यवस्था के अनुरूप द्विसदनीय व्यवस्था को अपना लिया गया। जिसे *काउंसिल ऑफ स्टेट्स* के नाम से जाना गया।(*rajyasabha.nic.in*)

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 79 केन्द्रीय व्यवस्थापिका, संसद की रचना का प्रावधान करता है। जिसमें राज्य सभा एक स्थायी सदन है। संविधान के अनुच्छेद 80

में राज्य सभा के गठन का प्रावधान है।(*कश्यप,1999*) 1951 में लोक सभा और 1952 में राज्य सभा का प्रथम निर्वाचन समपन्न हुआ। 13 मई, 1952 को राज्य सभा की प्रथम बैठक हुई और 23 अगस्त 1954 को *कॉउंसिल ऑफ स्टेट्स* को राज्य सभा का नाम दिया गया। (*rajyasabha.nic.in*)

स्वतंत्र भारत में यह सदन राज्य सभा के नाम से लोकप्रिय है। विशाल जनसंख्या, अनेक धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति का समोवश संसद में निहित है और राज्य सभा इसी बहुलवादी समाज की प्रतिनिधि सभा है। जिसका गठन एक पुनरीक्षण सदन के रूप में हुआ। जो लोकसभा द्वारा पास किये गये प्रस्तावों की पुनरीक्षा करे।(*मोरिस,1970*) पुनर्विचार के रूप में इस संस्था को महत्वपूर्ण संवैधानिक स्थिति प्राप्त है। परन्तु इस संस्था की संरचना और शक्ति के प्रति प्रारम्भ से ही नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया और आलोचना की गई कि अपने सदस्यों और कार्य दोनों दृष्टियों से राज्य सभा की कोई विशेष महत्ता नहीं है।

राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व व एकल संक्रमण मत प्रणाली से राज्यों के विधानसभाओं की सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता हैं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व होने के कारण अनेक दल अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं और राज्य विधानसभाओं के अनुपात में स्थान पाते हैं।(*बसु,1997*) तात्पर्य है कि विभिन्न दलों का प्रतिनिधित्व भी सामने आता है। फलस्वरूप अप्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा जिस राजनीतिक दलबन्दी से इस संस्था को बचाने का प्रयास किया गया, वास्तव में इसका गठन भी दलगत राजनीति के आधार पर किया जाता है और सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करने की बजाए अपने दलों का प्रतिनिधित्व करने मे ंज्यादा रूचि लेते हैं।

संघीय व्यवस्था के अनुरूप राज्य सभा में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व नही है।(*Pylee,2006*) प्रत्येक राज्य से राज्यसभा में कितने सदस्य होंगे यह उस राज्य की जनसंख्या पर निर्भर करता है। लेकिन भारतीय ऊपरी सदन में जनसंख्या के अनुपात में भी सदस्यों की संख्या समान नही है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 20.42 पर 31 पद और असम की 3.09 करोड़ की तुलना में सात पद प्राप्त है। जो पदों के वितरण की असमानता को दर्शाता है।

राज्य सभा के निर्वाचित सदस्यों पर भी राजनीतिक दलबन्दी के आरोप लगते रहे हैं।(*सिंह*) उदाहरणार्थ 18 वर्ष कांग्रेस में रहने के पश्चात औपचारिक रूप से भारतीय जनता दल में शामिल होने के तुरंत बाद ज्योतिरादित्य सिंधिया को मध्य प्रदेश से राज्य सभा उम्मीद्वार के रूप में नामित किए जाने(*outlookindia,2020*) की आलोचना हुई। इसी प्रकार राष्ट्रपति द्वारा 12 ख्याति प्राप्त सदस्यों के मनोयन के दुरूपयोग का आरोप भी कार्यपालिका पर लगता रहा है। वस्तुतः तुलनात्मक रूप से कम ख्याति और उपलब्धि प्राप्त (*गुप्ता,1977*) अथवा ऐसे व्यक्ति नामांकित किए गए जो अपने उत्तरदायित्व के प्रति पूरी तरह उदासीन रहे। ये सदस्य एक बार नामांकित होने के बाद सदन के

कामकाज में शायद ही कभी सहभागी होते हैं, उदाहरण के लिए सचिन तेंदुलकर वर्ष 2012 में अपने मनोनयन के बाद 348 दिनों में से 23 दिन और अभिनेत्री रेखा 18 दिन उपस्थित रहीं।(*thehindu,2017*) यद्यपि 12 'नामित सदस्य' की उपस्थिति में विशिष्ट वक्ताओं और राजनीतिज्ञों से परिपूर्ण यह सदन विशेषज्ञों की कमी पूरी करता है। लेकिन जिस प्रकार नामित सदस्यों पर सवाल उठते रहे हैं, वह संस्था को कमजोर बनाता है, उदाहरणार्थ 16 मार्च 2020 को पूर्व न्यायाधीश रंजन गोगोई को राज्य सभा का सदस्य नामित किए जाने पर सवाल उठाए गए और इस कृत्य को शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की उपेक्षा एवम् संविधान के मूल ढांचे पर हमला कहा गया।(*thehindubusinessline.com,2020*)

उपराष्ट्रपति राज्य सभा के पदेन सभापति होते हैं और राज्य सभा की अध्यक्षता करते है। जिनका निर्वाचन दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाता है। संवैधानिक आधार पर पद से हटाने के लिए राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत और जिससे लोकसभा सहमत हो, हटाया जा सकता है।(*कश्यप,1999*) तात्पर्य है कि दोनों ही स्थिति में लोक सभा की भूमिका महत्वपूर्ण होगी। अतएव राज्य सभा अपने अध्यक्ष को तब तक अपने पद से हटा नहीं सकती, जब तक कि लोक सभा भी उस प्रस्ताव से सहमत न हो जाए। यदि दोनों ही सदनों में भिन्न राजनीतिक दलों का बहुमत हो, तो एसी स्थिति में राज्य सभा अपने अध्यक्ष को हटाने में पूरी तरह असहाय होगी और इस प्रकार कार्यकारिणी उपराष्ट्रपति के द्वारा राज्य सभा के ऊपर अपना नियंत्रण बढ़ा लेती है।

इसी प्रकार से अनुच्छेद 107 (1)(*बसु,1997*) के अनुसार सामान्य विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त है। लेकिन मतभेद व गतिरोध की दशा में राष्ट्रपति के द्वारा दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाने का प्रावधान है। जबकि लोकसभा की संख्या तुलनात्मक रूप से ज्यादा होने और इसके अध्यक्ष के द्वारा अध्यक्षता किए जाने के कारण लोक सभा की स्थिति पुनः मजबूत हो जाती है। साथ ही संयुक्त अधिवेशन का बुलाया जाना भी वास्तविक अर्थों में मन्त्रिपरिषद् की इच्छा पर निर्भर करता है जो सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है और राज्यसभा उसे हटा नहीं सकती।

राज्य सभा धन-विधेयक संबंधी प्रस्तावों को न तो अस्वीकार और न ही उसमें कोई संशोधन कर सकती है। इस विधेयक को चौदह दिन की अवधि के भीतर स्वीकृति के साथ लोक सभा को लौटाना आवश्यक है। जिसकी सिफारिशों को लोक सभा स्वीकार करें या अस्वीकार करें। यदि किसी विधेयक को लेकर प्रश्न उठता है कि यह विधेयक धन विधेयक है या नही, तो लोक सभा अध्यक्ष का निर्णय ही अंतिम होगा।(*Pylee,2006*) उदाहरणस्वरूप आधार विधेयक को अध्यक्ष द्वारा धन विधेयक घोषित किए जाने के बाद राज्य सभा द्वारा इसमें संशोधन का कोई महत्व नही रह जाता है।

इस प्रकार प्रारम्भ से ही इस सदन के लिए मनोनीत और निर्वाचित होने वाले सदस्यों के चुनाव के अतिरिक्त इसकी शक्ति संरचना पर भी सवाल उठते रहे हैं। स्वीकार किया गया कि लोक सभा की तुलना में राज्य सभा के अधिकार सीमित हैं। फलस्वरूप राज्य सभा को एक कमजोर और निरर्थक सदन मानकर इस संस्था की आलोचना की जाती रही और संस्था को समाप्त किए जाने तक का प्रश्न समक्ष रहा है।

जबकि लोक सभा और राज्य सभा को संविधान ने महत्वपूर्ण विषयों में समान अधिकार प्रदान किया है। अनुच्छेद 368(2) के अधीन संवैधानिक संशोधन सम्बन्धी अधिकार दोनों सदनों को समान रूप से प्राप्त हैं और 108 अनुच्छेद के अनुसार इसमें संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं है। इसी प्रकार अनुच्छेद 54 व 61 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के निर्वाचन में और उन्हें पदमुक्त करने में दोनों सदनों को समान शक्ति प्राप्त हैं। यही स्थिति सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश जैसे संघीय अधिकारी को पदमुक्त करने की प्रक्रिया में भी मान्य है। संघीय लोकसेवा आयोग 323, वित्त आयोग 280, भारत में नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक 151, अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग 338, इत्यादि विभिन्न वैधानिक संस्थाओं और आयोगों के प्रतिवेदनों पर दोनों सदनों द्वारा विचार किया जाता है।(*Kapur, 1982*)

संविधानतः ऐसी विशेष शक्तियाँ हैं जो सिर्फ राज्य सभा में निहित है। जिससे इस सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा में वृद्धि होती है। अनुच्छेद 249(*बसु,1997*) यह उपसंघ करता है कि राज्य सभा अपने उपस्थित एवम् मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर सकती है कि राज्य सूची के किसी विषय पर केन्द्रीय संसद कानून बनाए। अनुच्छेद 312(*बसु,1997*) के अधीन राज्य सभा को यह अधिकार है कि अपने उपस्थित और मतदान करने वाले दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक किसी अखिल भारतीय सेवा की रचना का प्रस्ताव पास कर सकती है। ऐसी स्थिति में जब लोकसभा भंग हो चुकी हो तो राष्ट्रपति की संकटकालीन घोषणा को स्वीकृति देने का कार्य अकेले राज्य सभा करती है।*(वर्मा)* उपराष्ट्रपति को पदच्युत करने की कार्यवाही राज्यसभा ही प्रारम्भ कर सकती है।

अतः संवैधानिक स्थिति से ज्ञात होता है कि दोनों सदनों को ही अलग-अलग शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। जहाँ मंत्रिपरिषद को पदच्युत करने की शक्ति और वित्तीय शक्ति का प्रश्न है तो लोक सभा को यह शक्ति उसके जनता के प्रधान प्रतिनिधि होने के कारण प्राप्त है। यह शक्ति प्रतिनिधित्व नहीं *'तो कर नहीं'* के स्वाभाविक सिद्धांत से जुड़ी है।(*कश्यप,1999*)

वस्तुतः जब यह मान लिया जाए कि यह सदन सरकार बनाने ओर उसे चलाने में किसी भूमिका का निर्वाह नही करती है तब यह निरर्थक सदन जान पड़ती। जबकि संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया और राष्ट्रपति के चुनाव में राज्यसभा की महत्वपूर्ण

भूमिका के कारण राज्यसभा की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है और इसलिए किसी भी सरकार को अपनी स्थिति को मजबूत करने से पहले राज्यसभा को भी नियंत्रित करने की आवश्यकता होगी।(*Brass,1990*) इस प्रकार राज्य सभा केन्द्र सरकार और लोक सभा को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। जब जनता दल 1977 में लोक सभा में बहुमत में थी लेकिन राज्य सभा में कांग्रेस *(ओ)* और कांग्रेस (*आई*) भारी बहुमत में होने के कारण 43वां संशोधन विधेयक राज्य सभा में दो-तिहाई बहुमत से पारित किए जाने की सम्भावना नहीं थी। इसलिए विधेयक को लोक सभा में पुनःस्थापित करने के बाद रोक दिया गया। 45वां संशोधन विधेयक लोक सभा में पास करने के बावजूद राज्य सभा में कांग्रेस दलों के विरोध करने पर संशोधित किया गया।(*बसु,1997*) इसी प्रकार 64वां और 65वां संशोधन विधेयक 1989 में अपेक्षित बहुमत के अभाव में राज्य सभा से पास नहीं हो पाया। यद्यपि ये विधेयक लोक सभा से पास हो गए थे।(*त्रिवेदी और जैन,2008*)

भारत के उपराष्ट्रपति को राज्य सभा का पदेन सभापति बनाकर इस संस्था को गरिमा और प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। जो इसकी बैठकों का सभापतित्व करते हैं। सिद्धान्तः मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं और राज्य सभा उसे हटा नही सकती। लेकिन प्रशासन संबंधी कार्य और अधिकार के अन्तर्गत, राज्य सभा सरकार की आलोचना करके, प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछकर, कार्यपालिका से सूचना मांग कर, काम रोको प्रस्ताव इत्यादि अधिकार द्वारा मंत्रिपरिषद् को प्रभावित कर सकती है। राज्य सभा से देश के प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्तियाँ भी की जाती रही हैं। साथ ही सभा में मंत्रियों की उपस्थिति से भी संस्था की महत्ता कहीं ज्यादा बढ़ जाती है।

बी. डी. जत्ती ने राज्य सभा की वित्तीय भूमिका को महत्वपूर्ण माना और स्पष्ट किया कि बजट पर दोनों ही सदनों में चर्चा होती है। साथ ही संसद की लोक लेखा समिति, सार्वजनिक उपक्रम जैसी समितियों का भी प्रतिनिधित्व राज्य सभा करती है और धन बिलों में संशोधन करने की सिफारिश करने में संकोच नहीं किया जाता है। 1961 में आयकर बिल में काफी संशोधन की सिफारिश की गई और उसे लोक सदन ने स्वीकार भी किया।(*Kapur,1982*) यद्यपि इस सभा में विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर मतदान नहीं होता तथापि राज्य सभा के सदस्यों को भी विभाग संबंधित स्थायी समितियों में प्रतिनिधित्व दिया जाता है, जो अन्य बातों के साथ–साथ मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर विचार करते हैं। इस प्रकार विनियोग विधेयक तथा वार्षिक वित्त विधेयक राज्य सभा से हो कर गुजरते हैं। जिस पर राज्य सभा सिफारिश कर सकती हैं। जिसे लोक सभा चाहे तो स्वीकार या अस्वीकार करे।(*नारायण,2007*) भारत की संचित निधि से किसी धन की निकासी तब तक नही की जा सकती है जब तक दोनों सदनों द्वारा इस विधेयक को पारित नही कर दिया जाता। अतः अप्रत्यक्ष रूप से देश के वित्तीय प्रशासन को भी प्रभावित करने की शक्ति राज्यसभा के पास है।

यह सभा राजनीतिज्ञों की मांग को पूरा करता है क्योंकि राजनीतिक रूप से गम्भीर लेकिन चुनावी राजनीति से निवृत्त लोगों के लिए अवश्य ही यह एक अवसर होता है। जहाँ वे अपने अनुभव का परिचय देते हैं और जरूरत के अतिरिक्त भी उन्हें चर्चा करने का अवसर मिलता है। क्योंकि राष्ट्रहित में आवश्यक है कि किसी आवेग या अति उत्साह में विधेयक को पारित नहीं करके उसमें शांति से विचार किया जाए।

इस प्रकार द्वितीय सदन भी राजनितिक व्यवस्था का अंग है जिसके कार्य की प्रकृति ही राजनीतिक है। अगर इस सदन को शक्तिशाली होना है तो इसको दलीयता में पड़ना पड़ेगा।(*Whear,1963*) अतः सदन में दल का प्रभाव संघीय प्रकृति को मजबूत करती है। क्षेत्रीय राजनीतिक दल जिनका प्रभाव कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित होता है, अपनी क्षेत्रीय मांगों का दृढ़ता से समर्थन करते हैं, जो केन्द्र की बहुमत आधारित सरकार को एकतरफा निर्णय लेने से रोकती है। इस प्रकार बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था में इस सदन की महत्ता बढ़ती जा रही है। राज्य सभा जिस प्रकार निजी सदस्यों के विधेयक और गैर-वितीय विधेयकों में उतरदायित्व का निर्वहन करती है वह लोक सभा में सम्भव नही है। एक स्थायी संस्था के रूप में यह संसद में निरंतरता की भावना को साबित करता है।

वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में राज्य सभा ना सिर्फ संवैधानिक रूप से महत्वपूर्ण है बल्कि व्यावहारिक रूप से भी इसका महत्त्व बढ़ता जा रहा है। 2017 में गुजरात राज्य सभा की तीन पदों के लिए हुए चुनाव काँग्रेस और भाजपा के लिए प्रतिष्ठा की लड़ाई बन गई और एक मत पर जिस प्रकार दांव लगा वह न सिर्फ चौंकाता है।(*नवभारत टाइम्स,2017*) अपितु सिद्ध करता है कि इसके प्रत्येक पद के लिए राजनीतिक दलों के बीच संघर्ष और आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यद्यपि इसमें दलों के राजनीतिक हित को अस्वीकार नही किया जा सकता है और जो स्पष्ट करता है कि राजनीतिक दल लोक सभा की भाँति राज्य सभा में भी अपने दल का बहुमत बढ़ाना चाहते हैं जिससे वे अपने पक्ष में नीतियों का निर्धारण कर सकें।

उर्पयुक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि राज्य सभा, लोक सभा की भाँति एक अत्यंत अपरिहार्य सदन है और लोकतंत्र में जिसकी आवश्यकता संदेह से परे हैं। संविधान निर्माताओं ने तत्कालीन समय अनुरूप इस सदन की रचना और शक्ति का निर्धारण किया परन्तु बाद के वर्षों में राजनीतिक संस्कृति में जिस प्रकार के बदलाव हुए हैं उसका प्रभाव इस संस्था में भी हुआ है। फिर चाहे वह राज्य सभा पद की खरीद-फरोख्त से संबंधित हो (*economic times,2009*) या सदन के अन्दर एक दैनिक में प्रकाशित श्री विभूति मिश्र के उक्त बयान पर कि राज्य सभा भ्रष्टाचार का केन्द्र है और इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए, जैसी बहस हो (*Rajya,1973*) या फिर अगस्त, 2019 जम्मू–कश्मीर पुर्नगठन विधेयक पर हुआ विवाद हो।(*epw.in,2019*) जिस प्रकार से कृषि संशोधन विधेयक 2020 को राज्य सभा से बिना सदस्यों के मत

विभाजन के पास कर दिया गया और जिसके विरोध में विपक्ष द्वारा जो तरीके अपनाए गए, दोनों ही घटना अप्रत्याशित थी। इन घटनाओं से इस संवैधानिक संस्था की गरिमा और प्रतिष्ठा अवश्य धूमिल हुई है।

संवैधानिक विशेषज्ञ पी.डी. आचार्य ने आधार बिल को धन विधेयक घोषित किए जाने का विरोध किया और माना कि राज्य सभा को अपने विधायी कार्य करने के अपने अधिकार से दूर नही किया जाना चाहिए।(*orfonline,2017*) इस प्रकार सर्वविदित है कि लोकतंत्र में विचार-विमर्श की स्वतंत्रता निहित है और राज्य सभा इस अभिव्यक्ति की सर्वोच्च संस्था है।

स्पष्ट है कि उपनिवेश काल से लेकर आज तक इस सदन की आलोचना की जाती रही है परन्तु इसमें सुधार करने का प्रयास नही किया गया। इसके संगठन, कार्यप्रणाली और शक्तियों पर पुनः अध्ययन करने और इसमें परिर्वतन किए जाने की आवश्यकता है। इसके संघीय स्वरूप को मजबूत करने के लिए राज्यों की जनसंख्या के आधार पर इस सदन का पुर्नगठन किया जाए, जिससे क्षेत्रिय दलों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। इस संस्था की शक्ति को विस्तारित किया जाए, संघीय स्वरूप, केन्द्र–राज्य विवाद इत्यादि विषयों पर कुछ अतिरिक्त अधिकार दिए जा सकते हैं। राज्यपाल के पद के निर्धारण में राज्य सभा की महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित की जाए। अतः पूरी निष्पक्षता से इस सदन का गठन किया जाए।

उर्पयुक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि समयानुसार राज्य सभा की जिम्मेदारी और प्रासंगिकता में निरंतर वृद्धि हुई है। परन्तु इसकी गरिमा को बचाए रखना एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की जिम्मेदारी है। जिससे इस विशिष्ट संस्था का उपयोग राजनीतिक लाभ के स्थान पर राज्य और केन्द्र सरकार के मध्य संबंधों को मजबूत कर, संघवाद की परिकल्पना को पूर्ण किया जा सके। यद्यपि भारत में संसद ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था के अनुरूप सम्प्रभु नही है। तथापि संविधान को सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व सिर्फ संसद में निहित है। जिससे नियंत्रण और संतुलन के सिद्धान्त की आदर्श स्थिति को कायम हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कश्यप, सुभाष, (1999), भारतीय राजनीति और संविधान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठः 169,14.
2. गुप्ता, डी0 सी0, (1977), भारतीय शासन व्यवस्था एवं राजनीति, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0 लि0, नई दिल्ली, पृष्ठः 207.
3. जोन्स मोरिस (1970) हिन्दी रूपान्तरण, हरिन्दर के0 छावड़ा, भारतीय शासन एवं राजनीति सुरजित पब्लिकेंशस, दिल्ली पृष्ठः 259.
4. नारायण, योगेन्द्र, (2007), भारतीय संसद एक परिचय, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठः 22.

5. बसु, डी0डी0, 2016, हमारा संविधान, राश्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृष्ठः 199–200, 220–221, 209–211.
6. वर्मा, गोविन्दराम, भारतीय राजनीति और शासन, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया पृष्ठः 265–266.
7. सिंह, उमेद, संसदीय व्यवस्था में परिर्वतन की दिशाए, कलॉज पब्लिकेशन, पृष्ठः 165–166.
8. शरण, परमात्मा, (1969), भारत में शासन एवम् राजनीति का विकास, रस्तोगी एण्ड कम्पनी, शिक्षा साहित्य प्रकाशक एवं विक्रेता, मेरठ, पृष्ठः 173, 74.
1. Brass Paul R. (1990), The Politics of India Since Independence, Cambridge University ,Press, , page 50-51.
2. Kapur Anup Chand , (1982), The Indian Political System,S.Chand and Company LTD,New Delhi.248,217
3. Maansi Verma, Diminishing the Role of Parliament:The case of the Jambu and Kashmir Reorganisation Bill, 16 November,2019, epw.in
4. Narain, Yogendra, (2004), Understanding the importance of Rajya Sabha, Rajya Sabha Secretareat, Proceedings of the Seminar, Parliament House Anexes, New Delhi.
5. Payeli M. V. (2006) Constitutional Government of India, S. Chand and Company Ltd., page 271-273.
6. Trivedi R. N. & Jain Tripti, (2008) Indian Government Politics, Vishvabharti Publications, New Delhi. Page-228, Page-695.
7. Wear, K.C., (1963), Legislature, Oxford University Prees, New York.
8. http://www thehindubussinessline.com, 17 March 2020, Gogoi's nominationto RS: Do not underline Constitution, Opposition urges President.
9. http://www.thehidu.com, 11th April 2017, Tendulkar, Rekha poor at Parliament attendance.
10. http://www. outlookindia.com, 11 March 2020, Jyotiraditya Scindia, Now BJP man, named Rajya Sabha candidate from MP.
11. http://www. rajyasabha.nic.
12. http://www.orfonline/hindi-post मिश्र, सतीश 05, मई, 2012 राज्य सभा में सवालिया निशान।
13. http://www. navbhartimes.indiatimes.com, गुजरात राज्यसभा चुनाव क्या है जीत हार का पूरा गणित।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन : एक अध्ययन

स्निग्धा त्रिपाठी

lkjk'k *: भारत एक ग्राम बाहुल्य एवं कृषि आधारित विकासशील देश है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन भारत की ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य सुधार का कार्यक्रम है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में सुगमतापूर्ण एवं गुणवत्ता युक्त स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराकर विभिन्न स्तरों पर चल रही 'लोक स्वास्थ्य' कार्यक्रमों को सफल बनाती है। इसका लक्ष्य ग्रामीण स्वास्थ्य को उन्नत कर पंचायती राज संस्थाओं के जनभागीदारी को बढ़ाना, सेवाओं के ढाँचे का सुधार, देशी परम्परागत आरोग्य प्रणालियों को बढ़ावा देना, उनकी स्वास्थ्य सेवाओं के मुख्य अंग बनाना तथा स्वस्थ भारत को निर्माण को गति प्रदान करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में 'ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' का सारगर्भित विश्लेषण करते हुए इसके उद्देश्य, लक्ष्य एवं कार्यक्रमों की भूमिका का विस्तृत विवेचन किया गया है।*

प्रस्तावना

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन दिसम्बर 2005 में वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम ने नगरों और गाँवों की खाई को पाटने के लिए ग्रामीण विकास की एक महत्वकांक्षी योजना 'भारत निर्माण' की घोषणा की थी। 12 अप्रैल 2005 को शुरू की गई राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना मुख्यतः इसी योजना का एक भाग है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीबों, औरतों और बच्चों की अच्छी स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना है।[1]

इसका मुख्य उद्देश्य गरीब और कमजोर वर्गों को सुलभ, जवाबदेह, प्रभावी व विश्वसनीय प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ विशेष रूप से मुहैया कराना है। इसका उद्देश्य अधिकृत सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा) संवर्ग का सृजन, समुन्नत अस्पताल परिचर्या के माध्यम से ग्रामीण स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं की कमी को पूरा करना तथा आंतरिक और अंर्तक्षेत्रीय अभिमुखीकरण को सुधारने व संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने के लिए जिला-स्तर पर कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण करना भी है।[2]

विभिन्न सामाजिक क्षेत्र के विभागों के बीच अधिक अभिमुखीकरण लाने के उद्देश्य से अच्छे स्वास्थ्य के बुनियादी निर्धारकों के रूप में स्वच्छता व सफाई, पोषाहार तथा शुद्ध पेयजल पर उचित ध्यान देने हेतु व्यापक दृष्टिकोण के लिए उपरोक्त विषयों पर भी ध्यान देना है। इस मिशन का एक अन्य उद्देश्य राष्ट्रीय राज्य, जिला व उपजिला स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं स्वयं सेवी संस्थाओं व अन्य हितधारकों की भागीदारी के जरिए समाज में स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम की स्वीकार्यता को और अधिक बढ़ाना है। साथ ही प्राथमिक स्वास्थ्य अधोसंरचना का सुदृढ़ीकरण व सेवा सुपुर्दगी रूप में सुधार लाना है जोकि अथक् प्रयास से मिशन के उद्देश्य व लक्ष्य की ओर सकारात्मक रूप से अग्रसर हैं। रोटी, कपड़ा और मकान के बाद मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता अच्छे स्वास्थ्य की होती है। इसीलिए कहा गया है, ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है[3]।''

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरूआत 12 अप्रैल, 2005 को की गई। इसका उद्देश्य सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तक सस्ती, सुगम और उच्च गुणवत्ता युक्त चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना है। इस मिशन को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए इसके विस्तृत क्रियान्वयन ढाँचे को केंद्रीय मंत्रिपरिषद ने जुलाई 2006 में मंजूरी दे दी। इस मिशन के तहत प्रतिकूल स्वास्थ्य संकेत वाले राज्यों की पहचान की गई, जहाँ पर स्वास्थ्य सुविधाएँ संतोषजनक नहीं हैं, उन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। मिशन का उद्देश्य समुदाय के स्वातमत्व के अधीन पूर्णतया कार्यशील विकेंद्रित स्वास्थ्य प्रणाली की स्थापना करना है ताकि ग्रामीणों को सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाएँ मिलें। इसमें स्वास्थ्य रक्षा के लिए सहायक गतिविधियों पर भी ध्यान दिया गया है जैसे पानी, शिक्षा, पोषण, सामाजिक और लिंग समानता।[4]

भारतीय मनीषियों का चिन्तन पहला सुख निरोगी काया इस बात को प्रमाणित करता है कि पूर्ण स्वास्थ्य को बिना अन्य सुखों का आस्वादन नहीं किया जाता है। इसी वजह से भारत में पुरातन समय से ही आयुर्वेद, यूनानी चिकित्सा सिद्धान्त एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों सहित घरेलू उपचार प्रणालियों का प्रचलन रहा है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विशेष रूप से शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में हुई खोजों के पश्चात पीड़ित मानवता को राहत मिली है। स्वास्थ्य के महत्व को देखते हुए देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया है कि समस्त प्रकार के संसाधनों का भरपूर उपयोग तभी संभव है जब आम आदमी के लिए चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हों। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार सरकार का मुख्य प्रयास होना चाहिए।[5]

ग्रामीण विकास को गति प्रदान के लिए कृषि एवं सिचाई के साधनों में सुधार मुख्य आवश्यकता है। साथ ही ऊर्जा, परिवहन, शिक्षा, पेयजल, संचार उद्योग, आवास के अतिरिक्त जैसी आधारभूत सुविधाओं का प्रसार भी आवश्यक है। स्वतंत्रता के समय

ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में चिकित्सा एवं औषधालयों तथा सामुदायिक स्वास्थ्य रक्षा एवं प्राथमिक चिकित्सा की सुविधाएँ नगण्य थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में (2 अक्टूबर,1952) सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किए गए, जिसमें विकासखण्डों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं सहित आधारभूत विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन होने लगा है। स्वतंत्रता के समय देश के ग्रामीण क्षेत्र हैजा, इन्फलूएंजा, पेचिश, प्लेग तथा मलेरिया जैसी महामारियों से ग्रस्त थे और प्रतिवर्ष लगभग 13 लाख व्यक्ति इन संक्रामक रोगों के कारण असमय काल-कलवित हो जाते थे। 1947 में जन्म दर अधिक (41) और शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक (150) थी। इसका प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त निरक्षरता, गरीबी एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी थी। इन्हीं सब न्यूनताओं तथा समस्याओं के मद्देनजर भारत सरकार द्वारा गठित स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति 1946 ने उपचारात्मक चिकित्सा तथा बचावात्मक स्वास्थ्य सेवाओं के मध्य एकीकरण तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों (40 हजार की जनसंख्या पर एक जिसमें दो चिकित्सक, एक नर्स, चार जन स्वास्थ्य नर्स, चार मिडवाइफ, चार प्रशिक्षित दाई, दो स्वच्छता निरीक्षक तथा एक फार्मासिस्ट सहित 15 अन्य सहायक कार्मिकों के पद हों) की स्थापना का सुझाव दिया ताकि अभावों से जूझते ग्रामों का विकास सुनिश्चित हो सके।[6]

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में खोले गये प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में कई समस्याएं रहीं जिससे ग्रामीण स्वास्थ्य में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाया। कालान्तर में गठित मुदालियर कमेटी 1962, चड्डा कमेटी 1963, मुखर्जी कमेटी 1965, करतार सिंह कमेटी 1973, श्रीवास्तव कमेटी 1975, तथा बजाज कमेटी 1987 इत्यादि की सिफारिशों के पश्चात ही ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक जिले में एक सामान्य अस्पताल, खण्ड स्तर पर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र 25 हजार की आबादी पर स्वास्थ्य केंद्र तथा पाँच हजार की जनसंख्या पर एक उपकेन्द्र कार्यरत् हैं जहाँ कम-से-कम दो स्वास्थ्य कार्यकर्ता पद स्थापित हैं।

परिवार कल्याण, पोषाहार एवं मातृ-शिशु स्वास्थ्य सेवाओं के संचालन में कृषि कार्यों से जुड़े परिवारों का स्वास्थ्य-स्तर ऊँचा हुआ है। ग्रामीण आबादी में कार्यरत् स्वास्थ्य केन्द्र ग्रामजनों को निःशुल्क प्राथमिक चिकित्सा एवं सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करते हैं। पूर्व में इन केंद्रों के अभाव में कृषकों, श्रमिकों अथवा गरीब ग्रामीण परिवारों को या तो अंधविश्वासी चिकित्सा पद्धतियों का सहारा लेना पड़ता था या गाँव से दूर स्थित शहरों की ओर भागना पड़ता था। इस समस्या के कारण किसानों का समय, श्रम तथा धन अनावश्यक रूप से व्यय होते थे। नतीजतन ग्राम विकास की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित होती थी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा घोषित वर्ष 2020 तक सबके लिए स्वास्थ्य लक्ष्य के परिपेक्ष्य में भारत सरकार ने 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति घोषित की। राष्ट्रीय

स्वास्थ्य नीति में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण करके सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त करना निर्धारित किया गया। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य सेवाओं का विकेंद्रीकरण, रेल सेवाओं का विस्तार, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य तथा भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के मध्य समन्वय, सर्वव्यापी टीकाकरण, मातृ-शिशु तथा स्कूल स्वास्थ्य सेवाओं पर नियंत्रण एवं स्वास्थ्य शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। विगत् वर्षों में स्वास्थ्य सेवाओं की सुदृढ़ संरचना के कारण अनेक स्वास्थ्य समस्याओं से मुक्ति मिली है जिनमें प्लेग, हैजा, मलेरिया इन्फलूएंजा, पोलियो एवं कुकरखांसी पर नियंत्रण एवं चेचक का उन्मूलन प्रमुख हैं। संक्रामक रोगों से होने वाले असामयिक मृत्यु पर सफलता मिलने से मृत्युदर में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। परिणामस्वरूप मानव संसाधन के उपयोग की अवधि बढ़ गई है।[7]

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति स्वास्थ्य सेवाओं को और अधिक सुदृढ़ करने एवं दूरदराज के ग्रामीण इलाकों में सबसे गरीब परिवारों को सुलभ, किफायती और जवाबदेह स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का प्रारम्भ अप्रैल 2005 को किया। इसमें असंतोषजनक स्वास्थ्य सूचकों वाले दुर्गम क्षेत्रों को व विशेष ध्यान दिए जाने वाले राज्यों को रखा गया है। मिशन में पूरी तरह से सक्रिय, विकेन्द्रीकृत स्वास्थ्य सेवा पर बल दिया गया है जिसमें सभी स्तरों पर अंतरक्षेत्र आमेलन और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पेयजल, सफाई शिक्षा, पोषाहार, सामाजिक और स्त्री-पुरूष समानता के बारे में एक साथ व्यापक कार्यवाही सुनिश्चित हो सके।

jk"Vªh; xkeh.k LokLF; fe'ku dk mn~n'';

- गांव में रहने वाली गरीब महिलाओं तथा बच्चों को उत्तम स्तर की स्वास्थ्य परिचर्या एवं आम जन को उत्तम स्वास्थ्य परिचर्या सुलभ कराना।
- पोषण तत्वों, सफाई, स्वच्छता, पेयजल जैसे बेहतर स्वास्थ्य के नियामक तत्वों से स्वास्थ्य को सम्बद्ध कर एक सहक्रियात्मक दृष्टिकोण अपनाना।
- शिशु एवं मातृ मृत्यु दर में कमी लाना।
- महिला, स्वास्थ्य, बाल स्वास्थ्य, स्वच्छता, प्रतिरक्षण और पोषण जैसी जन स्वास्थ्य सेवाओं को सभी के लिए सुलभ बनाना।
- स्थानीय महामारियों सहित संचारी और गैर-संचारी रोगों की रोकथाम एवं नियंत्रण।
- एकीकृत व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या की सुलभता।
- जनसंख्या स्थिरीकरण, लिंग और जनसांख्यिकी संतुलन सुनिश्चित करना।
- स्थानीय स्वास्थ्य परम्पराओं का जीर्णोद्धार और आयुष को मुख्यधारा का अंग बनाना।
- स्वास्थ्य जीवन शैलियों को बढ़ावा देना।

jk"Vªh; xkeh.k LokLF; fe'ku dk izeq[k ?kVd fuEu gSa %&

- प्रत्येक गाँव में एक महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा) की तैनाती।
- पंचायत की स्वास्थ्य और सफाई समिति की अध्यक्षता में एक स्थानीय दल के माध्यम से एक स्वास्थ्य योजना का निर्माण।
- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों को मजबूत करना।
- दैनिक परिचर्या के लिए ग्रामीण अस्पतालों को सुदृढ़ बनाना।
- सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों के जरिए उसे मूल्यांकन योग्य तथा समुदाय के प्रति जवाबदेह बनाना।

भारत सरकार समाज के निम्न वर्गों और गरीबों के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएं चला रही है। इस प्रकार सरकार स्वतंत्रता के बाद से ही देश के सभी नागरिकों को विशेष रूप से आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों और वंचित वर्गों को प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य, आवास, सुरक्षित पेयजल, बिजली और खाद्य सुरक्षा जैसी मूलभूत सुविधाएँ मुहैया कराने हेतु विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों का संचालन कर रही हैं। इस कारण आज सैकड़ों योजनाएं और कार्यक्रम लोगों को गरीबी, अशिक्षा बेरोज़गारी, कुपोषण, भुखमरी जैसी समस्याओं से निजात दिला रही हैं।

सन्दर्भ

1. कुरूक्षेत्र, गाँव का विकास देश का विकास, जनवरी, 2009, पृ. 11
2. कुरूक्षेत्र ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर, 2008, पृ. 20
3. कुरूक्षेत्र ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर, 2008, पृ. 19
4. कुरूक्षेत्र ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर, 2008, पृ. 18
5. कुरूक्षेत्र ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर, 2008, पृ. 19
6. कुरूक्षेत्र ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर, 2008, पृ. 23
7. कुरूक्षेत्र ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर, 2008, पृ. 23



PUBLICATIONS

The Institute disseminates information, analyses, viewpoints and knowledge related to public administration, governance, policy and development through its regular publications viz., monthly digital editions of IIPA e-Newsletters, quarterly editions of Indian Journal of Public Administration (IJPA) in association with Sage Publications, quarterly editions of Nagarlok, quarterly editions of Documentation in Public Administration (DPA), biannual editions of Lok Prashashan (Hindi Journal) and quarterly editions of IIPA Digest.

So far IIPA has published more than 500 books, monographs, reports, working papers, and compendiums in spheres of governance and public administration. A few of the books authored by renowned authors including IIPA faculty members are also available for purchase.

INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION (IJPA)

(Quarterly since 1955)

Flagship refereed UGC CARE listed journal of IIPA, IJPA in collaboration with SAGE Publications publishes manuscripts covering topics related to Public Administration, Public Policy, Good Governance, Bureaucracy, Leadership, Environment, Law, Social Welfare, etc. Research articles, case studies, book reviews, essays, notes and documents related to themes authored by experts are regularly featured in IJPA. The author of the best article every year is conferred with the prestigious late Shri TN Chaturvedi Award by the Hon'ble Vice President of India.

LOK PRASHASAN (HINDI

(Bi-annually since 2008)

Lok Prashasan is IIPA's only Hindi journal published with an aim to promote Hindi language and encourage Hindi literature in the field of public administration. Articles and research papers related to Public Administration, Public Policy, Good Governance, Bureaucracy, Leadership, Environment, Law, Social Welfare, etc., are regularly published in this journal.

IIPA DIGEST

(Quarterly since 2019)

The magazine covers news, stories and features related to latest initiatives and trends of government.

NAGARLOK

(Quarterly since 1969)

The journal covers topics related to Urban Studies with a focus on Urban Life, Metropolitan System, Urban Economic Development, Urban Finances, etc.

DOCUMENTATION IN PUBLIC ADMINISTRATION (DPA)

(Quarterly since 1973)

DPA indexes articles/papers/reports/monographs on Public Administration covered by various periodicals.

IIPA NEWSLETTER (Monthly since 1955)

Now only available as an e-newsletter, it features news related to events and programmes conducted in the Institute.

To read more visit our site iipa.org.in

For contribution, subscription and advertisement related queries, please e-mail: chukkathmeghna@gmail.com



INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
INDRAPRASTHA ESTATE, RING ROAD, NEW DELHI - 110 002
011-23468300 | 011-23702440
helpdesk.iipa@gmail.com | iipa.org.in | @iipa9

Edited, printed and published by Surendra Nath Tripathi, Director, IIPA for Indian Institute of Public Administration, New Delhi and printed at New United Process, A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II, New Delhi-110 028